पहला सस्करण १६४०

दूसरा सस्करण १६५०

तीसरा सस्करण १६५१

चौथा सस्करण १६५२

मूल्य

राज सस्करण २।)

साधारण सजिल्द १।।)

साधारण अजिल्द १।)

प्रकाशक : नीलाभ प्रकाशन गृह, ५. खुसरो बाग़ रोड, इलाहाबाद

मुद्रक : इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स लि०, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद

डा० एम० एन० शर्मा के नाम

जो मेरे बड़े भाई भी हैं और मित्र भी !

'पूत कपूत होते है, पर पिता कुपिता नही होते'
लेकिन क्यो ? इस बात पर पिता कभी विचार नही करते !

स्वार्थ हमारे उन 'गुणो' को उजागर कर देता है, जिनके अस्तित्व से हम, अपने निःस्वार्थ क्षणो मे, सदैव इनकार करते हैं।

'यदि' को किस ने जीता है ?

# लेखक की ओर से

'छठा बेटा' मेरे उन दिनो की याद है जब दिमाग खासा परेशान था, मुझे स्मरण है, मैंने इसका पहला दृश्य लिख कर अपने मित्र राजेन्द्रसिंह बेदी को सुनाया (जो स्वय उर्दू के बडे प्रसिद्ध कथाकार हैं) तो उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया कि मैं कैसे ऐसी परेशान-दिमागी में हास्य का सृजन कर सकता हूँ। लेकिन जैसा कि मैंने हास्य-व्यग्य की अपनी ४२ कहानियो के सग्रह 'छींटे' मे लिखा है—पहले भावुकता ऐसे अवसरों पर बडी करुणाजनक चीजे लिखा लेती थी, पर बाद को उन्हीं बातो पर हँसी आने लगी। यह भी हो सकता है कि ज्यों ज्यो मस्तिष्क प्रौढ़ होता गया चीजों की वास्तविकता समझ मे आती गई और जो बाते पहले क्रोध अथवा क्षोभ उपजाती थी, वही हास्य उत्पन्न करने लगीं।

'छठा बेटा' को लिखे लगभग दस वर्ष होने को आये हैं। आज यद्यपि इसकी प्रतिकृति (Pattern) मुझे पसन्द नही और आज यदि मैं स्वप्न-नाटक लिखूँ तो शायद कोई दूसरा ही आकार अपनाऊँ, पर जहाँ तक शेष बातो का सम्बन्ध है, मुझे 'छठा बेटा' आरम्भ से अन्त तक पसन्द है।

इसका मूल-भूत-विचार (जैसा कि मैंने अपने लेख 'मैं नाटक कैसे लिखता हूँ' ※ मे लिखा है) मेरे मन में प्रीत नगर (अमृतसर) से अटारी तक, दस मील का लम्बा मार्ग एक इक्के पर तै करते हुए, पैदा हुआ।

---

※ अश्क जी के प्रसिद्ध नाटक सग्रह 'आदि-मार्ग' की भूमिका।

१

किसी जरूरी काम से मै लाहौर जा रहा था। प्रीत नगर से मील डेढ मील चल कर लोपोके से इक्का मिलता था। इक्का भरा हो तो कोई बात नही, एक सवारी की जगह तत्काल मिल जाती थी, खाली हो तो कई बार घण्टो रुकना पड़ता था। यू० पी० वाले पजाबी इक्के की कल्पना नही कर सकते। यहाँ का नवाबी-इक्का ऐसे लगता है जैसे बुर्का घोडे के बल पर उडा जा रहा हो और पजाबी इक्का, जैसे छोटे मोटे मकान को पहिये लग गये हो। बुर्के मे क्यो कि एक ही आदमी (औरत) की गुजाइश होती है, इसलिए इधर के इक्के मे एक ही आदमी आराम से बैठ सकता है, यो बैठने को तो तीन चार भी लटके चले जाते हैं, पजाबी इक्के मे साधारणत. पाँच छै आदमी बैठते है, लेकिन पुलिस का डर न हो अथवा देहात का रास्ता हो तो इक्के वाले आठ आठ दस दस सवारियाँ भर लेते हैं।

इक्का मुझे लोपोके मे मिल गया, परन्तु खाली था। उसके भरने की राह देखने का समय मेरे पास न था, इसलिए मैंने इक्के वाले से कहा कि वह और सवारियाँ न देखे, रास्ते मे यदि मिल जायँ तो ले ले नही पूरे इक्के के पैसे मै दे दूँगा।

आश्वस्त होकर इक्केवाले ने लगाम का सिरा हवा मे घुमाते हुए टिटकारी भरी। लेकिन अभी घोड़ा हिला भी न था कि गाँव से दो मुसलमान बूढ़ियाँ हाय तोबा मचाती और इक्केवाले को आवाजें देती भागी आयी। पास आने पर उन्होने बताया कि उनके लिए इसी घडी गाँव से चलना अति-अनिवार्य्य है, कि गाँव का दाना पानी उनके लिए हराम हो गया है, कि इक्के वाला उन्हे ले जायगा तो उसका सवाब (पुण्य) होगा।

इक्के वाले ने मेरी ओर देखा। मैंने कहा, "बैठा लो। पीछे बैठ जायेंगी, इक्का भी 'उलार ❀ न होगा।"

---

❀ आगे को।

वह बात क्या थी जिसके कारण उन बूढ़ियो के लिए लोपोके का दाना पानी हराम हो गया था, मुझे यह पूछने की जरूरत नही पड़ी। इक्के की पिछली सीटो पर आमने सामने बैठते ही उन्होंने कोसनों और गालियो का जो सिलसिला आरम्भ किया, उस से मुझे पता चल गया कि एक बुढिया अपने बड़े लड़के के यहाँ किसी उत्सव पर लोपोके गई थी और अपने साथ अपनी खाला-जाद बहन को भी लेती गई थी। अपनी बड़ी बहू के दुर्व्यवहार से तग आकर वह उत्सव को बीच मे ही छोड़, लड़ लड़ा कर चली आई थी और अपनी बहन को भी साथ लेती आई थी। दस मील की यात्रा का एक तिहाई भाग उसने अपने बड़े लड़के और बड़ी बहू को गालियाँ देने मे गुजारा। सास होने के नाते, अपने बेटे और बहू से उसकी वही शिकायतें थी, जो पुरातन काल से कर्कशा और ईर्षालु सासो को होती आई है।

फिर जब उसके मन का उबाल कुछ शॉत हुआ तो उसने अपनी उस खाला-जाद बहन को अपनी दुख-गाथा सुनानी आरम्भ की (पहले कितनी बार सुनाई होगी, इसका ब्योरा मेरे पास नही है) और मुझे पता चला कि किस प्रकार पति के मर जाने पर उसने स्वय मेहनत मजूरी करके अपने तीनो बच्चो को पाला . . किस प्रकार बड़ा बेटा उस 'कमीनी' बहू के आते ही अलग हो गया . . . किस प्रकार उसने अपनी आशाएँ मझले पर केन्द्रित की, किन्तु उस बडे को देख कर वह भी विवाह के पश्चात अलग हो गया. . . . तब बुढ़िया कई मील तक मॅझले लडके और उसकी बहू को गालियाँ देती रही। अन्त मे उसने अपने छोटे लड़के का जिक्र आरम्भ किया कि वह कितना सुशील, समझदार और आज्ञाकारी है। खुदा के बाद यदि वह किसी पर यकीन रखता है तो वह उसकी वही माँ है। अपने छोटे लड़के के गुणो का बखान करते करते वृद्धा की वाणी की कर्कशता एक विचित्र आर्द्र-तरल-स्निग्धता मे परिणित हो गई। अपनी मैली ओढनी से अपनी नाक साफ करते हुए

अन्त मे उसने सजल वाणी में कहा कि बस वह तो खुदा से दिन रात ही दुआ करती है कि उसके बच्चे का घर बस जाय तो उसके मन को भी सुख-शान्ति मिले।

उसकी इस आकॉक्षा को सुन कर मैं मन ही मन हँसा। उसका वह सुख-शॉति का अरमान ऐसा था जिसका पूरा होना उस परिस्थिति मे नितान्त असम्भव था। निश्चय ही वह तीसरे बेटे का विवाह करेगी, मैंने सोचा, उसी अरमान और चाव से जिसके साथ उसने पहले दो पुत्रो का विवाह रचाया था, परन्तु उसका वह तीसरा पुत्र अपने भाइयों के पद-चिह्नों पर न चलेगा, इसकी कोई सम्भावना न थी, क्योंकि उस बुढिया के रहते किसी बहू का उसके घर रहना उतना ही असम्भव था जितना किसी बहू की उपस्थिति मे उसका रहना।—उसकी वह आकॉक्षा मुझे मानव की उस छली आकॉक्षा का प्रतीक लगी जो कभी पूरी नहीं होती।

उस यात्रा के बाद इक्के का वह सफर, वह बुढ़िया, उसकी बातें, उसकी वह कभी न पूरी होने वाली आकॉक्षा, मेरे मन-मस्तिक मे घूमती रही। मेरा विचार उस पर कहानी लिखने का था, परन्तु फिर अपने आस-पास कुछ ऐसे पात्र मिल गये, जिनकी आकॉक्षा भी उस वृद्धा की अभिलाषा की भॉति कभी न पूरी होने वाली थी। तब मैंने उस मूल-भूत विचार मे ये नये पात्र फिट कर दिये और 'छठा बेटा,' तैयार हो गया।

गत वर्ष 'छठा बेटा' इलाहाबाद यूनिवर्सिटी तथा बीकानेर मे खेला गया है। मुझे प्रसन्नता है कि दोनों जगह बड़ा सफल हुआ। इलाहाबाद मे तो दर्शक (जिनमे स्वय लेखक भी था) हँसी के मारे लोट पोट हो गये। नृत्य और गान के अभाव मे भी व्यावसायिक रग मच पर यह कितना सफल हो सकता है, इसका भी पता चला।

५. खुसरो बाग रोड

३, ३, ५२

*उपेन्द्र नाथ अश्क*

# विवेचन

पाँच अंकों का लम्बा ऐतिहासिक नाटक 'जय पराजय' लिखने के बाद अश्क जी ने लिखा था कि उस तरह का कदाचित् वह उनका पहला और अन्तिम नाटक हो। कारण स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा था कि आज मशीनी युग के व्यस्त जीवन में, न हमारे पास उतने लम्बे नाटक खेलने का अवकाश है, न उन्हें देखने का और नाटक मुख्यतः देखने की ही चीज है और 'जय पराजय' के बाद अश्क जी ने 'स्वर्ग की झलक' लिखा जो ऐतिहासिक ऊहापोह न था, बल्कि एक सीधा-साधा सामाजिक व्यंग्य-नाटक था। अभिनय की दृष्टि से भी उसका ड्यूरेशन चार या पाँच घंटे न हो कर केवल डेढ़ दो घंटा था।

लेकिन जहाँ तक नाटक की अभिनेयता का सम्बन्ध है, अपने प्रस्तुत नाटक 'छठा बेटा' में अश्क जी 'जय पराजय' और 'स्वर्ग की झलक' से एक पग आगे बढ़े हैं। 'जय पराजय' तो खैर पुरानी शैली का नाटक है—पाँच अंक, प्रत्येक अंक में पाँच-पाँच दृश्य, और संकलन-त्रय रहित (समय, स्थान तथा अभिनय की इकाइयाँ न उस में सम्भव हैं, न अभीष्ट) किन्तु 'स्वर्ग की झलक' में भी जो आधुनिक शैली का खासा मनोरंजक और संतुलित नाटक है, नाटकीय रचना की उपर्युक्त तीनों इकाइयाँ पूर्ण-रूप में सम्पादित नहीं हो पायी।

प्रस्तुत नाटक 'छठा बेटा' इस दृष्टि से पूर्ण-रूपेण सफल है। एक ही बरामदे में पूरा नाटक खेला जा सकता है। उसकी अवधि भी उतनी ही है। उतनी ही अवधि और केवल उस बरामदे भर स्थान में ही बसन्तलाल, उनके मित्र दीनदयाल, दूर के भाई चाननराम और पंडित जी के छहों बेटों का सम्पूर्ण चित्र उनके पूरे विवरण (details) के साथ अत्यंत सफलतापूर्वक उपस्थित कर दिया गया है।

हिन्दी मे इस ढग के और नाटक न हो, यह बात नही। काट-छां
कर वे रगमच पर खेले जाने योग्य भी बनाये जा सकते हैं, परन्तु उ
के सम्बन्ध मे सब से बड़ी शिकायत यह है कि पढ़ कर उनसे आन
नहीं उठाया जा सकता। [पृथ्वीनाथ शर्मा के 'दुविधा' 'अपराधी' आर्
सेठ गोविन्ददास के 'दलित कुसुम', 'कर्त्तव्य', 'कुलीनता' आर्
प० लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'आधी रात', 'सन्दूर की होली' इसी प्रक
के नाटक है। गोविन्द वल्लभ पत के नाटक 'वरमाल', 'राजमुकुट
'अगूर की बेटी' अपवाद है।] इसके विपरीत 'छठा बेटा' पूर्णतया अभि
नेय तो है ही, साथ ही इस मे यह गुण भी विद्यमान है कि यह जैने
जी के शब्दों मे 'सुपाठ्य' भी है—अर्थात् इसे आप एक रोचक कहा
की तरह रसपूर्वक, बिना ऊबे पढ सकते हैं और उतना ही आन
प्राप्त कर सकते हैं, जितना शायद आप इसे देख कर प्राप्त करते। औ
यह लेखक की बहुत बडी सफलता है कि उसका नाटक उपर्युक्त दो
बाँके-तिरछे गुण पूरी मात्रा मे अपने अन्दर रखता है।

इस सम्बन्ध मे थोड़ा और आगे बढते हुए मैं यह स्पष्ट क
देना चाहता हूँ कि एक सफल अभिनेय नाटक (या अधिक प्रचलि
शब्दो मे 'रगमंच पर जमने वाले नाटक') के लिए यह आवश्यक नह
है कि वह पढने मे भी उतना ही रोचक और सुन्दर हो। इस प्रकार
नाटक की पाडुलिपि ऐसी भी हो सकती है कि आप यदि उसे पढने बैठ
तो शायद एक पृष्ठ के आगे ही न पढ पाये। अपनी बात की पुष्टि
लिए मै श्री बलराज साहनी द्वारा लिखित और निर्देशित नाटक 'जाद
की कुर्सी' का उल्लेख करूँगा। जिन्होंने यह नाटक देखा है, वे इस बात
से तो इनकार न कर सकेंगे कि राजनीति को छोडें तो, अभिनय तथ
कला की दृष्टि से यह एक अत्यत सफल नाटक है और आदि से अन्त
तक दर्शको को अपनी ओर आकर्षित रखता है। किन्तु इस नाटक क
पाडुलिपि मे वह आकर्षण नही। ठहाका तो दूर रहा, ओठो पर मुस्कराहट

तक नहीं आती। बहुत सी बातें, जो श्री बलराज ने अपने अभिनय द्वारा पैदा की हैं, उनका पाडुलिपि मे कोई अभास तक नही है। 'जादू की कुर्सी' अभिनय की दृष्टि से कितना भी सफल और मनोरंजक क्यो न हो, सुपाठ्य नहीं—'सिविक लिबर्टी और 'सिविल लिबर्टी' को सिवि—क लिबर्टी' और 'सिवि—ल लिबर्टी' कह कर श्री बलराज ने बार-बार लोगों को हँसाया, पर मसौदे में 'सिवि—क लिबर्टी' और 'सिवि—ल लिबर्टी' किसी प्रकार का हास्य उत्पन्न नही करते। यही हाल अधिकाश सम्वादो का है। जिन सम्वादो को अपने अद्वितीय ढग से अदा करके श्री बलराज ने जनता को हँसा कर लोट पोट कर दिया, वे अपने मे विरस और सपाट हैं।

लेकिन 'छठा बेटा' ऐसा नाटक नहीं। वह रङ्ग-मञ्च की दृष्टि से भी सफल है और अपने लिखित रूप में भी आपका पूरा-पूरा मनोरजन करने मे समर्थ है। वह बहुत कुछ शॉ, मॉहम, वाइल्ड, बैरी आदि के नाटको जैसा है, जो दुधारी तलवार है—पढे जाने पर भी तेज, पैने व अचूक और खेले जाने पर भी। श्री बलराज साहनी के नाटक की तरह इसका लिखित संस्करण कमजोर नही है।

इस साफल्य की प्राप्ति के लिए अश्क जी ने अपने तरकश के सभी अचूक तीर छोड़े हे—प्रारम्भिक पकड़, हास्य-व्यग्य, चरित्र-चित्रण, संवाद, कहानी, नाटकीयता और आकस्मिक समाप्ति। और यही कारण है कि कुल मिला कर यह नाटक, नाटकीय-कला-कौशल की एक अपूर्व कृति हो गया है।

नाटक प्रारम्भ होते ही शिथिल और ऊबा देने वाली चाल से नहीं चलता, बल्कि बहुत शीघ्र गति पकड़ लेता है। नाटक की इस प्रारम्भिक पकड़ में, अश्क जी 'स्वर्ग की झलक' की अपेक्षा 'छठा बेटा' मे अधिक सफल हुए है। दर्शको ( या पाठको ) के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित कर नाटक क्षिप्र-गति से आगे बढता जाता है। कही रुकता, उलझता या ठहरता-सा प्रतीत नही होता। नाटक के आरम्भ होते ही हम नाटकीय

कार्य-व्यापार और पात्रो के साथ आगे बढते चले जाते हैं।

रहा हास्य-व्यग्य तो यह क्षेत्र अश्क जी का अपना क्षेत्र है। उनके एकाकी नाटक 'जोंक', 'आपसी समझौता', 'चमत्कार', 'तौलिये', 'अजो दीदी', उच्च कोटि का हास्य प्रस्तुत करते हैं, 'अधिकार का रक्षक', 'बहनें', 'विवाह के दिन', 'भँवर' मे व्यग्य का जबर्दस्त पुट है।

लेकिन इन नाटकों और 'छठा बेटा' मे, हास्य-व्यग्य की दृष्टि से बहुत बड़ा अतर हैं। एक साथ इतना अधिक हास्य अश्क जी ने अपने किसी नाटक मे प्रस्तुत नही किया। नाटक के आरम्भ से ही धीरे-धीरे हास्य की अवतारणा शुरू हो गयी है। आरम्भ मे रङ्ग-मञ्च निर्देश की सूचनाएँ हल्के से व्यग्य का पुट लिये हुए हैं। डाक्टर हसराज जब कहते हैं, 'मै डाक्टर हूँ, मेरी पोजीशन है' तो उसके पहले ब्रैकेट में लिखा है (जैसे वे डाक्टर विधानचन्द्र राय से क्या कुछ कम हैं), जब गुरु अपने बाप की आलोचना करता है, 'वे मूछे रखते हैं जिन पर नींबू टिक सके और हमारे ऐसा भी मालूम नही होता कि दैव ने उन्हे कभी पैदा भी किया था.. ' तो चचा चाननराम हँसते हैं। ब्रैकेट मे लिखा है ('तुम अभी बच्चे हो, तुम्हारी यह चचलता क्षम्य है', के से भाव से) देव की हँसी की उपमा 'शरद् के पीले-से सूरज की हँसी' से दे कर उस गरीब क्लर्क की जिन्दगी और उसकी थकन को व्यक्त कर दिया है। कैलाशपति के सम्बन्ध मे लिखा है, 'कैलाश के पति मे और इन मे इतना ही अन्तर है कि यह तीसरी आँख से नहीं देखते' फिर जब पडित बसन्तलाल के नाम तीन लाख की लाटरी आ जाती है तब डॉक्टर हसराज के विनम्र खुशामदी भाव का खाका इन सुन्दर शब्दो मे खींचा है—'सामने कुर्सी पर डॉक्टर हँसराज बैठे हैं और आकृति उनकी उस कुत्ते की सी बनी हुई है जो मालिक को खाना खाते देख कर दुम हिलाता हुआ, विनम्र, खुशामदी, लालसा भरी दृष्टि से तकता हुआ, घुटने टेक कर बैठ जाता है कि तनिक मालिक का ध्यान हो तो दुम हिलाये। उसमें और

इनमे अन्तर मात्र इतना ही है कि इनके दुम नही जिसे ये हिला सके।'

ये और रंगमंच-निर्देश की अन्य सूचनाओ मे ऐसे अनेक स्थल अनायास ही हमारे ओठो पर मुस्कराहट की रेखाएँ दौड़ा देते है। ये मुस्कराहट की रेखाएँ सवादो तक पहुंचते-पहुचते हँसी का रूप धारण कर लेती हैं। और अभिनय-स्थलो पर पहुचकर तो दर्शक ठहाके के मारे कुर्सियो से उछल पड़ते हैं। नाटक मे ऐसे संवाद तथा अभिनय स्थलो की कमी नही।—आरम्भ मे जब पाँचो बेटे अपने पिता को अपने पास रखने मे असमर्थता प्रकट करते हैं और उनके बड़े बेटे डा० हसराज खीजते हैं कि पिता जी को आटा लाने के लिए दस का नोट क्यो दिया गया, कि उनके पिता पडित बसन्तलाल नशे मे धुत्त, आटे के बदले लाटरी का टिकट खरीद लाते है और डॉक्टर साहब अपनी पत्नी पर झल्लाते है कि उसने उन्हे दस का नोट क्यो दिया—लेकिन जब उसी टिकट के कारण लाटरी आ जाती है, कमला सादगी से कहती है—'वे रुपये तो हमारे थे, लाटरी का रुपया तो हमे मिलना चाहिए।' और डाक्टर साहब विवशता से उत्तर देते है—'पर डरबी वाले तो यह बात नही जानते!' फिर राय साहब चम्पाराम वाला किस्सा, दीनदयाल का पडित जी के जोर देने पर शराब का गिलास खाली करके रुमाल से मुँह साफ करके कहना, 'तुम्हे तो पता है, मैं रवि और मगल के दिन नही पीता' और इस पर पडित बसन्त लाल का अपने लडको को सुनाकर कहना, 'और यह कम्बख्त कहते है कि तुम शराबी हो, देखो कितना सयम है दीनदयाल मे! यह रवि और मगल के दिन नहीं पीता, यह इस युग का राजा जनक है।' ये और अन्य कई ऐसे प्रसंग हमे हँसने पर विवश कर देते है। साथ ही हमें लेखक की उस बारीक नजर का भी कायल होना पड़ता है जो इस मशीनी-युग के तलख और सघर्षमय व्यस्त जीवन के अन्दर भी ऐसे हास्यपूर्ण प्रसग ढूँढ़ लाती है.. ..और इन सब प्रसगो के ऊपर देव, कैलाश आदि को घुटे सिर व खड़ी चोटी लिये रंगमच पर प्रवेश करते देख हम खिलखिलाये बिना नही रह सकते।

और जब सिर घुटाये व जांघिया पहने, तेल की मालिश से शरीर चमका नाज़ुक कवि हरेन्द्र और 'भावी आई० सी० एस० गुरु रंगम पर आते हैं तो फिर हँसी का तूफान बरपा हो जाता है। उसके बाद उ घजा में उन लोगों को, दौड़ कर चिलमें भरते हुए, पंडित जी से पं लड़ाते हुए, झुक कर शराब के गिलास पकड़ाते हुए, पंडित जी की 'ह में बडे हास्यास्पद तौर पर 'हाँ' मिलाते हुए, और (अपने सिद्धान्तों विरुद्ध) चचा चाननराम के पाँव छूते हुए देख कर तो कुर्सी पर बै रहना मुश्किल हो जाता है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से, जैसा कि मैंने पहले कहा, अश्क जी पडित बसन्तलाल, ठा० हसराज और माँ के चरित्र अत्यन्त सुल रूप से पेश किये हैं। यह बात नहीं कि शेष चार भाइयों, चचा चाननरा और कमला के चरित्रों की लेखक ने नितान्त उपेक्षा की है—उन्हें अपने ब्रश के चन्द हल्के स्पर्शों से स्पष्ट कर अश्क जी ने अन्त त निभाया है, किन्तु पहले चार पात्रों के साथ उन्होंने अधिक श्रम किया और अधिक बारीकी से काम लिया है। अपने उपन्यास 'गिरती दीवारें में भी अश्क जी ने शराबी पिता का चरित्र उपस्थित किया है, किन्तु व चरित्रांकन इतना सुन्दर और सुघड़ नहीं हो पाया जितना 'छठा बेटा के शराबी पिता का। गिरती दीवारें का शराबी पिता क्रूर है, लेकिन 'छठ बेटा' का शराबी पिता शराबियों के समस्त गुण-दोषों से युक्त है। वह क्रू भी होगा (हालाँकि प्रस्तुत नाटक में उसकी क्रूरता का कोई उदाहरण नह मिलता) लेकिन शराबी की उदारता, सहृदयता, भावुकता, रुपया उड़ाने क क्षमता और मस्ती पूरे तौर पर चरित्र में विद्यमान है। पंडित बसन्त लाल का चरित्र ऐसा खरा, सुन्दर और सहानुभूतिपूर्ण उतरा है कि अश्क जी को दाद देने को जी चाहता है।

समय-साधक मित्र के रूप में (जो साधारणतः शराबियों के साथ लगे रहते है) दीनदयाल का चरित्र अत्यन्त यथार्थ है। उनके अनुमान

Calculations ) बहुत सच्चे हैं। मानव-हृदय का तथा उनके मनो-ज्ञान का इतना गूढ अनुभव यदि अश्क जी को न होता तो कदाचित् । चित्रों मे इतना वास्तविक रग न भर सकते। ऐसे चरित्र-चित्रण केवल कल्पना ही के बल पर नही किये जा सकते।

रही माँ, तो शायद नाटककार की समवेदना सब से अधिक उसी को मिली है। केवल यही एक पात्र है जो नाटक के हास्य में गाम्भीर्य की रेखा खींचता चला जाता है। अंत के दृश्य में तो माँ की व्यथा अनायास हृदय को छू लेती है।

सवाद लिखने मे अश्क जी को कमाल हासिल है, यह बात मैं फिर दोहराना चाहूँगा। 'छठा बेटा' के सवाद बेजोड़ हैं। उनके कारण पात्रो का चरित्र-चित्रण अधिक निखर गया है। साथ ही हास्य-रस के प्रतिपादन में भी उन्होंने पूरी सहायाता की है। सवाद अत्यन्त स्वाभाविक, रोचक, चुटीले और गतिशील है। सवादो की चुस्ती और उनके अन्दर निहित वाक्-वैदग्ध्य ही के कारण नाटक मे अपूर्व गति है और वह कही रुकता-सा दर्शको को ऊँघाने वाला नही सिद्ध होता है।

लेकिन सवाद चरित्र-चित्रण और अभिनय स्थल जिस ढाँचे को पुष्ट करते हैं, उसकी बनावट मे भी लेखक ने चतुराई से काम लिया है। कथानक की दृष्टि से देखा जाय तो यह पूरा का पूरा नाटक इल्यूयन ( illusion ) है। यथार्थ-जीवन मे बहुत ही कम ऐसा होता है कि किसी व्यक्ति को तीन लाख की लाटरी मिल जाय, तब उसके पुत्र गिरगिट की तरह थोड़ी देर के लिए रङ्ग बदल दे; फिर पिता से रुपया झटक कर पूर्ववत हो जायँ। लेकिन ऐसा हो सकता है; नाटक मे वर्णित घटनाएँ सम्भव हो सकतीं हैं, यह बात निर्विवाद है और मानव की सहज-स्वार्थ-भावना को लक्षित करती हैं। उसमें अतिरजना हो सकती है, ( जो हास्य के लिए जरूरी है ) पर वह आधार भूत सचाई को नहीं झुठलाती। अश्क जी कथानक की इस कमजोरी को जानते थे। इसी कारण उन्होंने अत्यन्त चतुराई से कथा के प्रमुख-अश को स्वप्न

का रूप दे डाला और नाटक को इस कमजोरी से मुक्त कर दिया। अ
नाटक की कथा असम्भव नही लगती, क्योंकि वह स्वप्न मे घटती है। औ
स्वप्न प्राय: इस प्रकार के भी होते हैं, बल्कि इस से भी अजीबो-गरीब त
होते हैं। पडित बसन्तलाल का इस प्रकार का स्वप्न देखना तनिक भ
अस्वाभाविक नही प्रतीत होता।

विश्लेषणात्मक-दृष्टि से देखने पर यह चीज भी स्पष्ट हो जाती है वि
पडित बसन्तलाल का स्वप्न मे अपने छठे बेटे की वापसी देखन
उनके अवचेतन मन की इच्छाओ का अमूर्त्त रूप है। जीवन मे जि
वस्तुओ अथवा प्रिय-व्यक्तियो को पाने की इच्छा प्रायः हमारे अवचेत
मन में दबी छिपी रहती है, हमारे स्वप्नो मे वे ही वस्तुएँ अथवा व्यत्ति
प्रायः अपने धुँधले रूप मे हमारे सम्मुख आ उपस्थित होते हैं औ
हमे ऐसा भास होने लगता है, जैसे हम ने उन्हे सचमुच ही छिपा लिय
है। अपने छठे बेटे दयालचन्द द्वारा सुख-प्राप्ति की अतृप्त इच्छा पडि
जी के अवचेतन मन मे छिपी हुई थी। वही इच्छा अमूर्त्त रूप मे स्वप्नद्वार
साकार होकर थोडी देर के लिए पडित जी को वह सुख पहुंचा देत
है जिसकी आकाक्षा पडित जी को अपने यथार्थ जीवन मे थी। और पडित ज
को (स्वप्न मे ही सही) वह सुख मिल जाता है, जो उन्हे जीवन मे कभ
न मिल सकता था, क्योंकि दयालचन्द यदि लापता न भी होता औ
बराबर उनके सामने ही बना रहता, तो वह भी अत मे अपने अन्य
भाइयो की तरह अपने पिता की ओर से मुँह मोड लेता और पुत्रो की इस
उपेक्षा के उत्तरदायी पडित बसन्तलाल स्वय ही हैं। वे कुछ ऐसे बेढ
आदमी हैं, और उनकी आदते इतनी विचित्र तथा दूसरो को परेशान व
अपमानित करने वाली है कि कोई भी सभ्य और इज्जतदार व सचेतन पु
उन्हे अपने साथ नहीं रख सकता, चाहे दिल मे वह उन्हे कितना भी प्यार
क्यो न करता हो। छठा बेटा दयालचन्द भी उनकी अनियंत्रित और विचित्र
ढग की 'सभ्य आदतो' से बहुत शीघ्र उकता जाता और अपने भाइयों

की तरह स्पष्ट कह देता कि मैं 'पिता जी के साथ एक मिनट तो क्या एक सेकेण्ड भी नहीं रह सकता !' लेकिन क्योंकि दयालचन्द सामने नहीं है, इस कारण पडित बसन्तलाल अपने अवचेतन मन मे इस विचार को लिये हुए है कि यदि उनका छठा बेटा होता तो वह अवश्य उनकी सेवा करता। जब कि यथार्थ मे यह बात नहीं है। सूक्ष्म हेत्वाभास (Subtle fallacy) ही इस नाटक का आधारभूत-तत्व है। छठा बेटा मानव की उस आकाक्षा का प्रतीक है जो कभी पूरी नही होती।

अश्क जी बहुत सतर्क कलाकार ह। उनकी रचना मे लापरवाही या टालने का भाव कहीं भी नहीं दीख पड़ता। अपने आलोचकों को उँगली उठाने का अवसर वे कहीं भी नहीं देना चाहते। प्रस्तुत नाटक मे भी उन्हे यह ध्यान बराबर है कि कथानक का मुख्य भाग पडित जी के स्वप्न के रूप मे रङ्गमञ्च पर उपस्थित किया जा रहा है और वे इस बात को भी जानते हैं कि स्वप्न कभी स्पष्ट और क्रमपूर्ण नहीं होता, बल्कि हमेशा धुँधला (Vague) और अस्पष्ट-सा होता है। कहीं पर बहुत चटक और कहीं अत्यन्त 'आउट आफ फोकस'। रङ्गमञ्च टेकनीक का भी उन्हें अपने आलोचकों से अधिक ज्ञान है। और यही कारण है कि उन्होंने नाटक का अन्तिम दृश्य छायाओं के रूप मे प्रस्तुत किया है। क्योंकि स्वप्न बराबर जारी है और अब समाप्ति पर है, इस कारण वह धुँधला और अस्पष्ट सा पड़ने लग जाता है। व्यक्ति नहीं, बल्कि छाया-मूर्तियाँ अब स्वप्न मे घूमने-फिरने लगती है और केवल उनके स्वर से ही अनुमान किया जा सकता है कि यह अमुक-अमुक व्यक्ति है। अश्क जी के इस अपूर्व नाटकीय-कौशल (Stage craft) पर उन्हे बधाई देने की इच्छा होती है। हिन्दी नाटकों मे यह अपने ढग का एक नवीन प्रयोग है।

नाटक इस छाया-मय कथा, उसे पुष्ट करने वाले हास्य व्यंग्य-पूर्ण सम्वादो तथा अभिनय-स्थलो के बल पर बड़ी तेजी से चलता हुआ हमारी उत्सुकता को चर्म-बिन्दु पर ले जाकर अत्यन्त अप्रत्याशित रूप से

समाप्त हो जाता है। एक बार हमें आघात सा लगता है। फिर एक लम्बी साँस कुछ सुख की, कुछ दुख की—हमारे अन्तर की गहराई से निकल जाती है और हम तरह तरह से सोचते हुए घर चले आते हैं। पंडित बसन्त लाल अथवा उनके पुत्रों की समस्या एक न एक रूप मे हमें अपनी समस्या लगती है और यही मेरे विचार मे लेखक की सबसे बड़ी सफलता है।

यों 'छठा बेटा' का एक सुनिश्चित रूप है। ब्लाटिङ्ग पर फैली स्याही की बूंद की तरह उसका खाका नही है। उसका चित्र बन सकता है उसमे आरम्भ, गति, संघर्ष, क्लाइमेक्स—नाटकीय कार्य-व्यापार की सभी अवस्थाएँ पायी जाती है।

'छठा बेटा' के बाद अश्क जी ने और भी अधिक प्रौढ और सशक्त नाटक 'आदि-मार्ग', 'अंजो दीदी', 'भँवर', 'कैद', 'उड़ान' आदि लिखे हैं, किन्तु जहाँ तक हास्य और गाम्भीर्य के सम्मिश्रण का प्रश्न है, उनकी प्रतिभा 'छठा बेटा' को नहीं छू सकी है।

१६ पार्क रोड
इलाहाबाद
दिसम्बर २३—४६

सत्येन्द्र शरत

# छठा बेटा

# पात्र

पं० बसन्त लाल—रेलवे के रिटायर्ड पदाधिकारी

| | |
|---|---|
| डाक्टर हंसराज<br>हरिनाथ (हरेन्द्र)<br>देवनारायण<br>कैलाशपति<br>गुरुनारायण<br>दयालचन्द | पंडित बसन्त लाल के छै लड़के |
| माँ | पंडित बसन्त लाल की पत्नी |
| कमला | पंडित जी की बहू, डाक्टर हंसराज की पत्नी |
| दीनदयाल | पंडित जी का मित्र |
| चाननराम | दूर के रिश्ते में पंडित जी का भाई |
| हरचरण<br>मुंडू | नौकर |

[डाक्टर हंसराज का मकान (जो वास्तव मे डा० हसराज का किराये का मकान है ) कुछ इतना बड़ा नहीं। पूरा मकान भी यह नही। एक बड़ी इमारत का केवल एक भाग है—तीन कमरे हैं ( यद्यपि शब्द 'कमरे' उन १२×११ फुट की दो, तथा १०×८ फुट की एक कोठरी के लिए अधिक आदर-सूचक प्रतीत होता है। ) एक स्नानगृह है ( जो सीढ़ियो के नीचे बच जाने वाली छोटी-सी जगह मे, तख्ता रूपी किवाड़ लगा कर बना दिया गया है और जहाँ नहाने में दक्ष होने के लिए कुछ दिन अभ्यास करना अनिवार्य है। ) इसी स्नानगृह के साथ छोटा सा रसोई-घर है—बस यही साढ़े तीन अथवा पौने चार कमरे डा० हसराज के इस मकान मे है।

ऐसे ही चार भाग इस इमारत मे और हैं। पूजीवादी मनोवृत्ति से विपन्न-कृषको को बचाने के लिए, जब पंजाब सरकार ने साहूकारा-बिल की कैंची का आविष्कार किया और चाहे अस्थाई रूप ही से हो, किसानो के फदे काट दिये, तो उस मनोवृत्ति ने नये फदे ढूढ़ निकाले। यद्यपि इन फदो के शिकार अब कृषक न होकर निम्न-मध्य-वर्ग के नागरिक थे। इन्ही फंदों को मध्यवर्गीय शिक्षित समुदाय की भाषा में पोर्शन्ज़ (Portions) अर्थात् बड़ी इमारतो के किराये पर चढ़ाये जाने वाले भाग कहा जाता है। और पंजाब की राजधानी मे ऐसी इमारतो की कमी न थी, जिन मे ऐसे दस दस फंदे निर्मित थे।

पर्दा डा० हसराज के मकान, अर्थात् पोर्शन के बरामदे मे खुलता है। बरामदा भी इस पोर्शन के अनुरूप ही है। रसोई-घर तथा स्नानगृह इस के दायीं ओर को हैं, सामने १२×११ फुट के दो कमरे हैं, जिन का एक एक दरवाजा बरामदे में खुलता है। इन दोनो सामने के कमरो मे से दायें हाथ के कमरे और स्नान-गृह के मध्य एक मार्ग है, जो इमारत के दूसरे पोर्शनों के पास से होता हुआ इमारत के बड़े दरवाजे को जाता है। १२×८ फुट का कमरा बरामदे के बायीं ओर को है, और आजकल वह डा० साहब के सब से छोटे भाई गुरु की अध्ययनशाला का काम दे रहा है। रसोई-घर का और इसका दरवाजा आमने सामने है।

यह बरामदा घर मे एक महत्त्व का स्थान रखता है और प्रायः इस से खाने, बैठने और सोने के कमरो का काम

लिया जाता है। बरामदा डाइनिङ्ग रूम है—इस का प्रमाण रसोई-घर से तनिक हट कर बिछी हुई दो चटाइयाँ देती हैं, जिन पर घर के सब लोग बैठ कर अपनी बारी से खाना खाते हैं, किन्तु जिस पर इस समय (मैदान खाली देख कर) गणेशवाहन श्री मूषक जी महाराज मटरों अथवा टमाटरों पर दाँत तेज कर रहे हैं। ड्राइंग रूम अर्थात् बैठने के कमरे के नाते एक बेंत का हल्का सा मेज और बेंत ही की दो कुर्सियाँ बरामदे के मध्य पड़ी हैं। मेज पर एक कलम-दवात भी रखी है। स्लीपिङ्ग रूम—सोने के कमरे—के नाम पर तनिक बायीं ओर को हट कर, गुरु के कमरे के समीप, एक चारपाई बिछी हुई है।

समय क्या है, इस का अनुमान ही लगाया जा सकता है। बात यह है कि अपने समस्त महत्व के होते इस बरामदे को अभी तक एक क्लाक भी प्राप्त नहीं हुआ और जो छोटा टाइमपीस गुरु की अध्ययनशाला में मेज पर टिक-टिक किया करता है, उस की आवाज यहाँ सुनायी नहीं देती। इसलिए समय का पता रसोई-घर से आने वाली सुगंधि, अथवा मेज कुर्सियों से लेकर चारपाई तक एक बड़ी सी तिकोन बनाने वाली धूप ही से लगाया जा सकता है।

लेकिन फरवरी का आरम्भ है, इसलिए धूप पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। दिन बडे हो रहे हैं, जहाँ धूप आने पर पहले दस बजते थे, अब वहाँ आठ बजे ही धूप आ जाती है, इसलिए इस ओर से निराश होकर हमें रसोई-घर की ओर नाक तनिक फुला कर

सूँघने का प्रयास करना होगा। पकती हुई सब्जियों की सुगंधि धूप की पार्श्व-भूमि के साथ बता रही है कि अभी नौ, पौने नौ से अधिक समय नही हुआ।

बरामदे मे इस समय निस्तब्धता छाई हुई है। वास्तव मे आज गुरु की पहली दो घटियाँ खाली हैं और वह अपने कमरे में अध्ययन कर रहा है, नहीं तो इस समय तक वह आकाश-पाताल एक कर दिया करता है और बेचारे बरामदे के फर्श को, जो अहिसा के मामले में सोलहों आने महात्मा गाधी का अनुयाई है, कई बार उसके पदप्रहार, अथवा यों कहिए कि बूटप्रहार सहन करने पड़ते है। डाक्टर साहब भी, जो इस समय तक—"मैं कहता हूँ, मैंने एक पेशंट को समय दे रखा है"; "कभी समय पर खाना मुझे मिलेगा या नहीं" अथवा "जल्दी करो नही तो बिना खाये मै चला जाऊँगा" आदि वाक्यों के गोले रसोई-घर पर बरसाते हुए बरामदे मे घूमा करते हैं, इस समय इमारत के बाहर चचा चाननराम के साथ घूम रहे हैं। चचा चाननराम डाक्टर साहब के सगे चचा तो नही, शरीके मे से हैं, लेकिन अपना कोई चचा न होने से डाक्टर साहब और उनके सब भाई उन्हे चचा ही सा मानते है। इसीलिए उन पर अपना कुछ अधिकार समझते हुए, एक विशेष मिशन को लेकर वे उनके पास आये है और उन्ही की खातिर डाक्टर साहब ने नौकर को दुकान पर भेज दिया है कि यदि कोई रोगी आ जाय तो उन्हे तत्काल सूचित किया जाय।

बरामदे मे निस्तब्धता ऐसी है कि चटाई पर 'किट-किट' करते हुए चूहे की आवाज साफ सुनाई देती है। इस निस्तब्धता को हम उत्सुकता भरी निस्तब्धता कह सकते हैं। ऐसा मालूम होता है कि बरामदे के स्तम्भ, मेज, कुर्सियाँ, चारपाई, यहाँ तक कि धूप भी कुछ सुनने के लिए उत्सुक है, दर्शकों की उत्सुकता भी, लगता है क्रोध की सीमा को पहुचा चाहती है, इसीलिए शायद डाक्टर हंसराज चचा चाननराम के साथ इस निस्तब्धता और उत्सुकता को मिटाते हुए, स्नानगृह के पास वाले दरवाजे से बातें करते-करते दाखिल होते हैं।

*०  हंसराज :* ये सौगंधें! (व्यग से हॅसते है) भूले से कही गई बात का इनसे अधिक मोल होता है।

*चाननराम :* मुझ से उन्होंने प्रण किया था।

*० हसराज :* (व्यंग से) सौगंध भी खाई होगी।

*चाननराम* · (चुप!)

(चारपाई पर जाकर बैठ जाते हैं।)

*० हंसराज :* (दोनो हाथ कमर पर रख कर शब्दों पर जोर देते हुए) यही तो मैं कहता हूँ। जब पहले के प्रण और सौगंधें अभी तक पालन की बाट देख रही हैं तो ये कब पूरी होंगी।

[हँसते हैं और जैसे उन्होंने इस बात से चचा को निरुत्तर कर दिया हो, आराम से कुर्सी पर बैठ जाते है और टागें मेज पर रख लेते है। ]

*चानन राम* : ( जो चचा हैं, आखिर यों हारने वाले नही ) पर भाई, समय भी तो अब बदल गया है।

*डा० हसराज* : ( बेपरवाही से सिर हिलाकर, जैसे इस बात का उ तो गढा-गढ़ाया है ) पर स्वाभाव तो समय के सा नहीं बदलता।

[जिनकी प्रतिज्ञाओ, सौगंधो और स्वाभाव का ज़िक्र हो रहा है, वे इन डा० हसराज के पिता पडित बसन्तलाल के अतिरिक्त कोई दूसरा नही। अभी-अभी वे रिटायर हुए हैं और पाँच छै सहस्र का ऋण चुका कर प्रावीडेंट फड से जो रुपया बच गया था, वह दो चार सप्ताह ही में उन्होंने सट्टे, जुए और शराब की भेंट कर दिया है और गुरदासपुर छोड़ कर यहाँ अपने बडे लड़के के पास आ गये हैं। जीवन में दूरदर्शिता किस चीज का नाम है; यह उन्होंने कभी नहीं जाना। छै जिसके लड़के हो, उसे भविष्य की चिन्ता हो, इससे विचित्र बात वे और कोई नहीं समझते रहे। बडे गर्व से सीना फुला कर, वे मित्रों के सामने सदेव कहते आये हैं कि यदि हरेक लड़का दिन भर टोकरी ढोकर भी एक रुपया साँझ को कमा लायेगा तो छै रुपये हो जायँगे, फिर मैं क्यों चिन्ता करूँ! लड़कों के टोकरी ढोने की नौबत नहीं आई, क्योंकि

किसी न किसी प्रकार अपने पिता की मद्यपता के होते हुए भी उन्होंने शिक्षा प्राप्त कर ली है। डा० हंसराज सब से बड़े हैं और डाक्टर हैं। दूसरे सुपुत्र लेखक है— एक छोटा-सा प्रेस तथा मासिक पत्र चला रहे हैं, नाम हरिनाथ है किन्तु हरेन्द्र कहलाना अधिक पसन्द करते हैं। तीसरे देवनारायण, छावनी के डाकखाने में काम करते हैं। चौथे अबोहर मे टिकट-क्लक्टर लगे हुए हैं। नाम कैलाशपति है। कैलाश के पति और इनमें इतना ही अन्तर है कि ये तीसरी आँख से नही देखते। पाँचवाँ गुरु है, बी० ए० मे पढ़ता है। परिश्रमी है और उसके बड़ा आदमी बनने के स्वप्न सब लिया करते हैं। डा० हंसराज, किसी आगामी सहायता के विचार से नहीं तो इसी ख्याल से —कि वे अपने रोगियों के सामने इस बात का उल्लेख बड़े गर्व-स्फीत स्वर मे कर सकेंगे कि वह जो सबजज या मैजिस्ट्रेट या डिप्टी है, मेरा ही भाई है, मैंने ही उसे पढाया है—अपने इस पोर्शन का १० × ८ फुट का वह कमरा उसे दिये हुए हैं और उसके खाने का खर्च भी सहन किये जा रहे हैं। छठा और सबसे छोटा लड़का पिता के व्यवहार से तंग आकर जो भागा तो उसने चार वर्ष से कोई खोज खबर नहीं दी। दो चार गालियों के साथ—'वह साला मेरा लड़का ही नहीं'—इतना कह देने के सिवा, पिता ने उसका कभी जिक्र नहीं किया। भाई भी लगभग उसे भूल चुके हैं, इसलिए कि यदि वह होता तो उसकी पढाई आदि की व्यवस्था भी उन्हे ही करनी होती (और यदि अब वह

कहीं आ जाय तो डा० साहब तो इतने प्रसन्न हों कि एक दिन उनके घर खाना न पके ) हॉ, मॉ कभी-कभी रो लिया करती है। नाम भी भला-सा था—दयालचन्द या कृपालचन्द, किन्तु इन पॉच वर्षों में घर वालो को वह भी-भूल-सा गया मालूम होता है।—इसलिए दयालचन्द को ( क्योंकि उसका कुछ पता नही ) छोड कर शेष सब टोकरी नहीं ढो रहे, किन्तु उनके पिता की चिन्ता अवश्य करनी पड रही है और चचा चाननराम उनकी ही सिफारिश करने आये हैं—रिटायर हो गये हैं, पास पैसा नहीं रहा। अब कहॉ रहें, यह समस्या है। चचा चाननराम का विचार है कि डाक्टर साहब के पास ही उनका रहना श्रेयस्कर है, क्योंकि गुरुदासपुर मे रहेंगे तो उनके मित्रादि आ मिलेंगे, यहाँ रहेंगे तो कुछ सुधरे रहेंगे। परन्तु डाक्टर साहब ने टॉगे हिलाते-हिलाते निर्णय कर लिया है और वह निर्णय चचा चनानराम को सुनाने के लिए टॉगें नीचे करके वे उठकर बैठ गये हैं।]

*डा० हंसराज :* देखिए चचाजी, मैं डाक्टर हूॅ। मेरी पोजीशन है। मेरे यहॉ बड़े-बड़े पदाधिकारी आते हैं। पिता जी की गुज़र यहॉ न होगी। तीन चार दिन उन्हें यहॉ आये हुए हो गये हैं और इस बीच मे मेरी रात की नींद हराम हो गई है और मैं सोचने लगा हूॅ कि यदि कुछ देर और वे मेरे पास रहे तो मेरी सब प्रेक्टिस

चौपट हो जायगी। भाग्य से आज आप आ गये हैं। देव और गुरु भी यहीं है, हरेन्द्र को मैंने बुलवा भेजा है। कैलाश किसी समय भी पहुँच सकता है। कल उसका पत्र आया था कि वह कल प्रातः की गाड़ी से आयगा ( कलाई पर घड़ी देखते हुए ) गाड़ी कब की स्टेशन पर पहुँच चुकी होगी और... ..

*चाननराम* : परंतु .. . !

हंसराज : परन्तु नही चचा जी। इस बात का निर्णय आज हो ही जाना चाहिए। मैं अपने उत्तरदायित्व से कन्नी न काटूँगा, किंतु मेरे यहाँ सदैव के लिए उनका रहना नही हो सकता।

*चाननराम* : आखिर...वह....

हंसराज : ( जैसे वे डा० विधानचन्द्र राय से क्या कुछ कम हैं ) मैं डाक्टर हूँ। मेरी पोज़ीशन है। मेरे यहाँ बड़े बड़े पदाधिकारी आते है। मैं वेटिंगरूम में तिनका तक तो रहने नही देता ( खड़े हो जाते हैं। ) और ये कीचड़ भरे जूते लिये आ जाते है।

[ दोनो हाथ पतलून की जेबो मे डाले कुर्सी से चटाई तक और चटाई से कुर्सी तक एक चक्कर लगाते हैं—फिर रुक कर ]

—: मै नौकर तक को मैले कपड़े पहन कर दुकान में आने की आज्ञा नही देता और वे टखनो तक ऊँची धोती—वह भी आधी—मैली सी खुले गले की

कमीज पहने, नंगे सिर चले आते हैं और वैसे ही कौच मे आकर थ्रॅम जाते हैं।

[ फिर कुर्सी से चटाई तक और चटाई से कुर्सी तक चक्कर लगाने लगते हैं।

गुरु अपने उसी १० × ८ फुट के कमरे से, हाथ में एक खुली पुस्तक लिये तेज़ तेज़ दाखिल होता है। दोनों टकराते टकराते बचते हैं। दोनों एक दूसरे को थामते हैं और डाक्टर साहब कुर्सी तक अपना चक्कर पूरा करने और गुरु रसोई-घर को छूने चल देता है। ]

गुरु : ( रसोईघर के दरवाजे को छूकर ) भाभी . . . ( दरवाजे को खोल कर सिर अन्दर करते हुए ) मैं कहता हूँ, मेरे जाने मे केवल एक घंटा गया रह है।

[कुछ क्षण उसी तरह खड़ा रहता है फिर सिर बाहर निकाल कर और मुड़कर—जब कि डाक्टर साहब उसी तरह सिर नीचा किये, पतलून मे हाथ डाले, कुर्सी से चटाई की ओर जा रहे होते हैं—]

— : लीजिए, पिता जी आटे की बोरी लेने गये हैं, तो आ चुका आटा।

( बेजारी से सिर हिलाता है। )

[पतला दुबला, पाँच फुट साढे पाँच इन्च का युवक है—रग गेहुआ, बाल लम्बे और चमकीले, लेकिन माथा बिलकुल छोटा—खडे कालरों वाली कमीज और पतलून के बावजूद, शक्ल सूरत से जरा भी तो नहीं

-लगता कि यह डिप्टी कमिश्नर, मैजिस्ट्रेट, सबजज छोड़ मुख्तार भी बन सकेगा। किन्तु भाग्य अपनी विभूतियाँ देते समय शक्ल सूरत कम ही देखता है। बहुत से सुन्दर मातहत युवक इस बात को भली-भाँति समझते हैं। और इस समय तो डाक्टर साहब भी भूल गये हैं कि उनका यह भाई कभी डिप्टी होने जा रहा है, क्योंकि वे उसकी बात का उत्तर दिये बिना फिर कुर्सी की ओर चल देते है जहाँ कि चचा ने इस बीच मे उनकी आपत्ति का हल सोच लिया है।]

*चाननराम* : कपड़ो का तो हो सकता है। उन्हें तुम लोग नये कपड़े ..

*डा० हंसराज* : कदापि नही हो सकता। सफाई का स्वभाव भी दूसरी आदतों की भाँति एक समय चाहता है, बनते-बनते बनता है। उनमे और हम मे आधी सदी का अन्तर है।

*गुरु* : (भावी आई० सी० एस० ) वे मूँछें रखते हैं, जिन पर नीम्बू टिक सके और हमारे ऐसा भी मालूम नहीं होता कि दैव ने उन्हे कभी पैदा भी किया था। वे सिर घुटा कर रखते हैं—चटियल मैदान की भाँति ! और हम दो-दो महीने इस मामले में नाई को कष्ट नहीं देते, वे कमीज और तहबन्द पहने अनारकली मे घूम सकते

हैं और हम सोते समय भी सूट उतारने में हिचकिचाते है।

[ चाननराम 'तुम अभी' बच्चे हो, तुम्हारी यह चचलता क्षम्य है', के से भाव से हँसते हैं ]

*डा० हंसराज* : ( छोटे भाई की सहायता को आते हुए ) हँसी की बात नही चचा जी ! बचपन का स्वभाव एक दिन मे नहीं बदल सकता। एक दिन मे वे अपने पुराने संस्कारों को छोड़कर सभ्य समाज के शिष्टाचार नहीं सीख सकते। वे पिताओं तथा पतिओ के ईश्वरीय-अधिकारो ( Divine Rights ) मे विश्वास रखते हैं। उनके विचार मे लड़का चाहे डाक्टर छोड़ गवर्नर भी क्यो न हो जाय, पिता से मिलने पर तत्काल उसे उनके चरणों मे झुक जाना चाहिए, फिर चाहे वे बाजार में अथवा स्टेशन के प्लेटफार्म पर ही क्यों न खड़े हों और कितने भी प्रतिष्ठित मित्र क्यो न उनके साथ हों।

*गुरु* : और पिता की गाली सुनकर उसे चुप खड़ा रहना चाहिए, अथवा ऐसे मुस्कराना चाहिए जैसे उस पर फूल बरस रहे हों !

*चाननराम* : माता-पिता की गालियाँ तो घी-शक्कर सी मीठी होती है। जिसे ये नहीं मिली, वह जीवन मे एक महान विभूति से वंचित रह गया है।

(दोनो भाई जोर से कहकहा लगाते है)

चाननराम : (अप्रकृतिस्थ हुए बिना) प्रणाम की बात है तो भाई माता-पिता के चरणों मे झुकना संतान की अपनी प्रतिष्ठा है। मुझे उन मित्रो की मानसिक अवस्था पर तरस आता है जो इस पर नाक-भौं चढ़ाते है।

गुरु : चाहें बाजार हो या स्टेशन का प्लेटफार्म ?

चाननराम : कही भी क्यो न हो, तुम तो भला उनके लड़के हो, और उनके चरण ही छूने पर इतनी बाते बना रहे हो, मेरे साथ जानते हो क्या हुआ ? दीनदयाल . ..

डा० हसराज : (जेब से कुञ्जियो का गुच्छा निकालकर उसे अगुलियो पर घुमाते हुए) दीनदयाल !

चाननराम : हॉ वही, एक दिन उनके साथ बाजार मे पडित जी चले जा रहे थे। आते-आते शायद सब्जी मंडी के ठेकेदार की जेबे गर्म करते आये थे। मैंने दोनों को हाथ जोड़कर 'नमस्ते' की। कहने लगे—'नहीं, झुक-कर प्रणाम करो।' मेरे साथ मित्र भी थे, किन्तु मैं चुपचाप उनके चरणों मे झुक गया।

गुरु : छिः !

चाननराम : फिर कहने लगे, इनके भी पॉव छुओ !

डा० हंसराज : (गर्जकर, जैसे उनसे ही कहा हो) दीनदयाल के ?

चाननराम : लेकिन मैं झुक गया और वे इतने ही मे प्रसन्न हो गये।

डा० हंसराज : (क्रोध से दॉत पीसते हुए) उस मूली जेबकट के पैरों में, जिसे यदि मेरा बस चले तो ..

*कमला* : (सामने के कमरे से निकलती है ) मैंने कहाँ दिये। ऱ
तीन बार कहा—लाओ बहू रुपये दो, लाओ बहू
दो, लाओ बहू रुपये दो ! गुरु को पढ़ने दो ! ऱ
परीक्षा समीप है, मैं बस अभी ले आऊँगा।

( बड़े रौब से मटकती हुई चली जाती है। )

*डा० हंसराज* : ( अचानक उठकर और दोनों मुट्ठियाँ इकट्ठी भींच कर,
विटप की भाँति झूलते हुए, शब्दों पर जोर देते
यह नहीं होगा, यह नहीं होगा। देखिए चचा जी,
रुपये महीना मैं दे सकूँगा... जो भी आप
जिम्मे लगा देंगे ! किन्तु रहना यहाँ उनका नह
सकता।

*चाननराम* : लेकिन पिता.....पुत्र.....कर्तव्य.....

*डा० हंसराज* : ( विटप पर हवा का दबाव और भी अधिक हो जात
और वह और भी झूलता है ) मैं पुत्र के कर्तव्यों से भ
भाँति परिचित हूँ, किन्तु पिता का कोई कर्तव्य ही
यह मैं नहीं मानता, सात वर्ष के कड़े परिश्रम के
मेरी प्रेक्टिस कुछ चलने लगी है, मैं उसे यों बर्बाद
कर सकता। परसों जब वे पिये हुए आये और बा
से ही उन्होंने अधिक मद्यपता के कारण थरथ
हुई अपनी कर्कश आवाज में पुकारा 'हंसू' तब
तो दिल धक धक कर उठा था। बाहर आ
देखा—बूट के तस्मे खुले हैं, धोती की कोर धरती
लटक रही है, कमीज का गिरेबान फटा हुआ है अ

पगड़ी बगल में है ( विटप पर तूफान का ज़ोर कम हो जाता है । ) क़िस्मत अच्छी थी कि उस समय दुकान पर कोई पेशेंट न था, बड़े धैर्य के साथ मैं उन्हें घर ले आया ।

[ऐन उस वक्त बाहर से देव आकर चुपचाप दरवाजे की चौखट से पहलू के बल खड़ा हो जाता है, आयु अठाइस वर्ष से अधिक नहीं, परन्तु डाकखाने की बैठक ने उसे बत्तीस पैंतीस का बना दिया है । चेहरे की दो चार रेखाएँ 'डिलिवरी', 'बुकिंग' 'सॉर्टिंग' की विरसता का पता देती हैं, जिन विभागों में कि वह क्रम से अब तक काम करता आया है । मूछें बढ़ी हुई हैं । इसलिए नहीं, कि उसे बड़ी मूछें पसन्द हैं, बल्कि इसलिए कि मूछें कटवाने का समय उसे नही मिला, हँसमुख है, किन्तु अब उसकी हँसी ऐसे ही ठिठुरती हुई प्रकट होती हैं जैसे शरद् के बादल भरे आकाश मे पीली-श्वेत सूरज की मुस्कान ।

किसी को भी उसके आने का पता नहीं चलता, इसलिए डाक्टर साहब अपनी बात ज़ारी रखते हैं । ]

डा० हंसराज · और पुकारने का ढंग तो देखो ....न हंसराज, न हंस ( नकल उतारते हुए ) हंमू ! ( जो विटप या वह पौधा सा होकर धरती पर लेट जाता है । ) और मैं दो बच्चों का बाप हूँ और डाक्टर कहलाता हूँ ।

[ व्यंगमयी वेदना के भार से हंसते हैं। वहाँ चौखट के साथ खड़े खड़े देव के चेहरे पर वही शरद का सूरज क्षण भर के लिए मुस्कराता है। ]

चाननराम : ( वहीं जमे हुए ) माता पिता बच्चों को उनके बचपन का नाम ....

डा० हंसराज : नहीं चचा जी, यह मुझ से न होगा, आप देव से क्यों नहीं कहते।

[ दरवाजे में सूरज का तेज क्षण भर के लिए प्रखर हो उठता है। ]

देव : जिससे उनकी एक दिन तो दूर एक पल के लिए भी नहीं बन सकती।

[ सब आश्चर्य से उसकी ओर देखते हैं। शरद का सूरज उनके समीप आ जाता है। ]

डा० हंसराज : ( खिन्न हुए बिना ) तुम दिन भर दफ्तर में रहते हो और दफ्तर भी तुम्हारा समीप नहीं कि वे पहुँच जायें पूरे छै मील है..... नहर के पास.....!

देव : लेकिन रात को मैं घर आता हूँ और रात को साधारणतया मेरे इन बालों को देखकर उन्हें गुस्सा आया करता है। जब पिता जी 'बहराम' के स्टेशन पर थे, तब मेरा दुर्भाग्य कि एक दिन मैं शाम की ट्रेन से वहाँ चला गया। रेलवे गार्ड के सामने ही उन्होंने मुझे बालों से पकड़ लिया.. 'ये हीजड़ों

की भाँति बाल बना रखे है तुमने.. .' और पुरुषत्व और पुंसत्व पर एक भाषण झाड़ते हुए मेरी जो गत बनाई .

*चाननराम* : ( जो अपनी धुन के पक्के हैं, स्थिर अचल, जहाँ बैठे हैं, वहाँ से हिले नहीं ) तब तुम बच्चे थे, पर .

देव : पर जिनके लिए डाक्टर साहब अभी तक 'हंसू' हैं, उनके लिए बेचारा देव .

( शरद् का वही सूरज हँसता है । )

—. और फिर रात को ही उन पर गाने की धुन सवार होती है। एक बार मुझ से कहने लगे ..'तुम गाओ' अब मैं क्या गाता। विवश हो चिंघाड़ने लगा। आँखों में मेरी आँसू भर आये। कहने लगे ..अच्छा गाते हो, प्रेक्टिस जारी रखो, तुम्हे लखनऊ के म्युज़िक कालेज मे दाखिल करा देंगे।

[ गुरु ठहाका मारकर हँस पड़ता है, हसराज डाक्टरो की भाँति हँसते हैं, देव के चेहरे से मात्र बादल तनिक से हटते हैं, चचा चाननराम कदाचित् इसलिए नहीं हँसते कि बच्चो की हँसी मे क्या शामिल हो.

हरचरण एक बिस्तर और बैग उठा दाखिल होता है । ]

*डा० हसराज* : कैलाश आ गया ?

*हरचरण* : दुकान पर हैं जी, मैंने कहा—आप तनिक बैठे को रोगी......

*डा० हंसराज* : मैं जाता हूँ।

*माँ* : ( रसोई-घर का दरवाजा खोलकर ) गुरु तनिक माइकि लेकर जाना तो। आये नहीं देखो तो कहं ठहर गये? नहीं जा तू ही वहाँ से कुछ आटा ले आ, कैलाश भी तो आ गया है।

*गुरु* : होंगे कहाँ? सब्जी मन्डी मे एक ही तो जगह है उनके जाने की।

[ हरिनाथ (हरेन्द्र) प्रवेश करता है। हाथ में कुछ कागज लिये और फर्श पर इधर उधर देखते और कुछ ढूँढते हुए।

धोती कुर्ता और उस पर चादर पहने है, बाल तनिक लम्बे हैं और पाँवों में चप्पल हैं। ]

*हरिनाथ* : मैं पूछता हूँ, रात को मैं इधर तो नहीं रख गया।
( तिपाई के नीचे ऊपर देखता है। )

*चाननराम* : क्या ढूढ रहे हो, क्या चीज गुम हो गई?

*हरिनाथ* : बड़े परिश्रम से लिखी थी।
( फिर इधर उधर देखता है। )

*देव* : क्या था भाई?

*हरिनाथ* : एक कविता थी। देर से। मैं लिख रहा था, कितनी अच्छी बन रही थी, मुझे तो याद भी नहीं।

चाननराम : तनिक बैठो, कविता फिर लिख लेना ।

हरिनाथ : पर मुझे तो वह भेजनी थी । कम्पोज़िटर बेकार बैठे है, साइकिल पर भागा आया हूँ ।

चाननराम : मैं साइकिल पर देव को भेज दूंगा । इन पन्द्रह मिनटों मे कुछ विगड़ न जायगा । मैं तो बुलवाने ही वाला था । अच्छा हुआ कि तुम आ गये ।

हरिनाथ : मैं कहताहूँ, वह गुम कहाँ हो गई, वह कविता, छै महीने हो गये मुझे उसकी थीम* सोचते ।

गुरु : कोई खंडकाव्य शुरू किया था क्या ?

हरिनाथ : नही जी, एक फुलस्केप के दोनों ओर लिखी हुई थी ।

(हताश सा बरामदे के मध्य खडा हो जाता है ।)

देव : यह आपके हाथ से क्या है ?

हरिनाथ : ( चौककर खिसियानेपन से ) वाह ! अरे मैं इस बीच में इसे बराबर हाथ मे लिये फिरा हूँ ।

देव : ( कविता उसके हाथ से लेकर ) आप तनिक बैठे, चचा जी को आप से दो बाते करनी हैं, कविता मैं अभी नौकर के हाथ भिजवा दूंगा ।

( चला जाता है, हरिनाथ कुर्सी पर बैठ जाता है । )

चाननराम : देखो तुम्हारे पिता अब रिटायर हो गये हैं । मैं नहीं चाहता, वे घर पर रहें । वहाँ उनके पुराने यादगार हैं, वहाँ वे न सुधरेंगे ।

---

*थीम (Theme) आधार-भूत विचार

*हरिनाथ* : वहाँ वे सुधर चुके। शादीराम, रामरत्न, बनार दास, बंसीलाल .....सब मतवाले, लेकिन दूसरो माल पर। हमारे पिता जी अपना घर फूंक तमाशा दिखाने वाले।

*चाननराम* : यही तो मैं भी कहता हूँ। उन्हें आवश्यकता है अच संगति की और फिर ऐसे व्यक्ति की, जो उन अच्छी तरह देखभाल कर सके। गुरु और देव बच्चे हैं! हंसराज का मन उनसे न मिलेगा। कल के संबंध मे मैं कह नहीं सकता। वह अक्खड़ तबी का आदमी है। मै उसे कहूँगा अवश्य, परन्तु तुम मुझे बड़ी आशा है। तुम समझदार हो, साहित्यि हो, मानव के गुण दोषो से परिचित हो। तुम्ह पास ...( हरिनाथ चौकता है। ) वे कु सम्हल.....

*हरिनाथ* : ( दार्शनिक-भाव से तनिक हँसकर ) अब वे क सम्हलेंगे।

*चाननराम* : तुम्हारे पास रह कर .

*हरिनाथ* : मेरे पास, परन्तु मै तो सात्विक व्यक्ति हूँ। वे ठह खाने पीने वाले आदमी। वे चौथे रोज मुर्ग भून वाले और फिर मदिरा ( मुँह बनाता है, जैसे नाम से उसका चित्त मिचलाने लगा हो ) मै तो पास भी न बैठ सकता, मै तो उस कमरे मे बैठना तक सह नहीं कर सकता।

[ जैसे शराब के नाम से उसका दम घुटने लगा हो, उठ कर घूमता हुआ, धोती के पल्ले से हवा करने लगता है।

डा० हसराज और कैलाश पति ज़ोर-जोर से बातें करते प्रवेश करते हैं। ]

*कैलाश* : बख्शो बी बिल्ली चूहा लँडूरा ही भला। मुझ से उनकी एक दिन, एक दिन क्या, एक पल नहीं पट सकती। मै उनकी एक गाली तक नहीं सुन सकता। गाली तो दूर, एक बार उन्होंने मुझे idiot ( मूर्ख ) कहा था और मैंने तीन दिन खाना न खाया था . ..

*डा० हंसराज* : अरे भई अब पिछली बातों को . . .

*कैलाश* : आप भूल सकते है वे सब बाते , मैं नहीं भूल सकता। याद है आपको, उस दिन उनकी कितनी ज्यादती थी। घर मे खाने को नहीं था और वे बीस रुपये ( जो माँ उधार लाई थी ) किसी श्रेष्ठ-व्यक्ति को दे आये थे। ( तनिक जोश से ) उनके लिए प्रत्येक व्यक्ति श्रेष्ठ है, केवल घर वालो को छोड़ कर। और जब मैंने आपत्ति की थी तो तलवार लेकर मेरी ओर दौड़े थे। ( नौकर को आवाज देता है ) ओ मुंडू ओ मुंडू.. !

( हरचरण रसोई घर से प्लेट धोता धोता आता है। )

—: साबुन और तेल स्नानगृह मे रख दे। यह लम्बी यात्रा और सम्मा सट्टा लाइन की यह धूल ! मै तो बर्बर लग रहा हूँगा।

[ छै भाइयों में यद्यपि यह चौथा है तो भी वह अपने उस कवि और उस क्लर्क भाई से बड़ा लगता है। चौड़े जबड़े, टेढे मेढे दाँत और आँखों में हिंसा ज्वाला है—बिखरे हुए, धूल भरे बालों पर ( जिनसे वह सत्य ही बर्बर लगता है, ) हाथ फेरता हुआ वह इधर उधर घूमता है ।]

*चाननराम* : ( उठकर, उसके पास जाकर, उसके कंधे पर हाथ रखते हुए ) परन्तु कैलाश ....

*कैलाश* . परन्तु नही चचा जी। मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं पूछता हूँ—उन्होंने हमारा कितना ख्याल रखा है? वे-आप के बच्चे हम से अच्छी तरह पलते होंगे और फिर उनके अत्याचार .

*चाननराम* : परन्तु बेटा

*कैलाश* : ( घूमते हुए दाँत पीसकर ) अब चाहे आप भूल जायें, मैं जीवन भर नहीं भूल सकता वे सब बातें। पता है न आपको ? टाइफाइड से मैं मृत-प्राय हो रहा था मल्लूपोते से बुआ का लडका बैजनाथ आया था। तब उन्होंने क्या ऊधम मचाया था।

*चाननराम* : पुरानी बातें....

*कैलाश* : पर मेरे लिए तो वे सब नयी हैं। इतनी सी बात थी न कि बैजनाथ ने आते ही पचास रुपये माँ को दिये कि वे उन्हें अपने पास रखें। जाते जाते वह उन्हें ले जाता। दीवाली के दिन थे, उनको न जाने कैसे उनको

उनकी गंध मिल गई। लगे माँ से रुपये माँगने। उसने कहा कि मेरे पास एक भी रुपया नही। आप ही कहिए दूसरे के रुपयो को वह कैसे उन्हें दे देती। उठा कर जलती लालटैन उन्होने उसके दे मारी। मैंने रोका तो तलवार उठा लाये। मेरे सिरहाने लम्बी छुरी वाला हन्टर था। सौभाग्य से बीच-बचाव हो गया, नही तो किसी का खून हो जाता।

*चाननराम* : (निराश होकर) परन्तु बेटा, अब तो न उनका वह स्वभाव है, न वह शरीर। दम खम भी उनमे वह पुराना नही। अब ये सब बातें वे कहाँ कर सकते हैं...

*डा० हंसराज* : (हँसकर) पर स्वभाव तो वही है।

*गुरु तथा देव* : (दोनो एक साथ बोलते हुए) स्वर की कठोरता तो वही है। शराब पीने का स्वभाव तो वही है।

[नशे मे चूर प० बसन्तलाल प्रवेश करते है। पाँव लड़खड़ा रहे हैं। सिर नगा है। कमीज़ के बटन खुले हैं। तहमद धरती पर लटक रहा है। एक पाँव से जूता गायब है। हाथ मे एक पुर्ज़ा सा है (जो लाटरी का टिकट है) आवाज़ थराथरा रही है...]

*बसन्तलाल* : ओ हंसू ..

[डा० हँसराज आग्नेय-दृष्टि से उनकी ओर देखते हैं और आग भरे स्वर से ही कहते है :—]

—: आप तो आटा लेने गये थे।

बसन्तलाल : कमबख्त आटा क्या ? मैं तीन लाख रुपये का टिकट ले आया हूँ। तुम्हें विलायत भेज दूँगा।

( कुर्सी पर बैठते बैठते लुढ़क जाते हैं। )

डा० हंसराज : ( उठ कर और रसोई-घर की ओर देखते हुए चीख कर ) मैं कहता न था और सब मर गये थे क्या ? ये नौकर किस मर्ज की दवा होते हैं। भेज दिया इनको चीजें लाने के लिए। अब पड़े भूखों मरो . ।

गुरु : ( अपने कमरे को भागता हुआ ) मेरे तो कालेज का समय हो गया है। अब रोटी . .

[ कमरे में गायब हो जाता है। कमला रसोई-घर से मटकती हुई निकलती है। ]

कमला : नौकर को और कोई काम नहीं करना होता क्या ? आप इतने लोग क्या करते हैं ? तिनका तक तो कोई तोड़ता नहीं !

( दूसरे कमरे में चली जाती है। )

देव : मैं भी चलूँ, मुझे कैंट पहुँचना है।

( जिधर से आया था, उधर से चला जाता है। )

कैलाश : ओ मुंडू, साबुन तेल रखा है या नहीं ?

माँ : ( रुँआसी सी शक्ल लिये रसोई-घर में झाँकती है ) इन्हें उठाकर चारपाई पर तो लिटा दो। धरती पर पड़े हैं।

*बसन्तलाल* : ( उठने का यत्न करते हुए ) कौन कम्बख्त हमें उठा सकता है.. हम.. हम स्वयं उठेंगे.. .....

[ उठते हैं, किन्तु लड़खड़ाकर गिर पड़ते हैं। चाननराम तथा डा० हंसराज उन्हें उठाकर बिस्तर पर लिटा देते हैं। ]

( पर्दा गिरता है। )

( कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है । )

[ बरामदे में सन्नाटा है । धूप की बड़ी तिकोन अब एक छोटी सी आयत बन गई है । रसोई-घर से सुगंधि अभी तक उठ रही है, किन्तु, चूंकि केवल सब्ज़ियों से ही भूख नहीं मिट सकती, इसलिए शायद डाक्टर साहब स्वयं आटा लेने गये हैं । गणेश-वाहन श्री मूषक जी महाराज फिर कहीं से आ गये हैं और इस प्रकार इधर-उधर विचर रहे हैं, जिस प्रकार राजधानी से भागा हुआ अधिपति पुनः अपना राज्य पाने पर । चटाइयाँ खाली हैं, कुर्सियाँ खाली हैं, केवल चारपाई पर पंडित बसन्त लाल पड़े खर्राटे ले

रहे है। लाटरी का टिकट उनका धरती पर गिर पडा है, किसी ने उसको उठाने का कष्ट नही किया और वे सो रहे है और उनके खर्राटे निस्तब्धता को और भी निस्तब्ध बना रहे हैं ]

( पर्दा फिर गिरता है। )

( पर्दा फिर उठता है । )

[ वही बरामदा और वही सामान । केवल इतनी बदली हुई है कि चटाइयों के स्थान पर त्व[illegible] बिछा है, जिसके साथ बैठी हुई माँ कात रही [illegible] ( गर्मियों में काती जायगी तो सर्दियों में का[illegible] आयेगी, इसीलिए ) साथ में एक दूसरी पीटी है । व[illegible] शायद कमला की है, क्योंकि उस पर एक क्रोशि[illegible] से बुना जाता मेजपोश पड़ा है । चारपाई वैसे [illegible] बिछी है और उस पर कोई सो भी रहा है । खर्रा[illegible] भी ले ही रहा होगा किन्तु उसके खर्राटों का स्व[illegible] चर्खे की 'घँ-घँ' में शायद सुनाई नहीं देता । मै[illegible]

वाले महाशय पंडित बसन्तलाल हैं, किन्तु शायद वे नही हैं, क्योकि पर्दा उठने के पल भर बाद ही वे पूर्ववत् बग़ल मे पगड़ी दबाये, खुले हुए गले और फर्श पर घिसटती हुई आधी धोती की कोर से बेपरवाह, मूँछों पर ताव देते हुए झूमते झामते प्रवेश करते हैं। उल्लास उनके चेहरे पर फूटा पड़ता है और पाँव उनके धरती पर ठीक नही पड़ते।

आते ही पगडी को कुर्सी पर फेंककर खडे खड़े झूमते हैं और नौकर को आवाज देते हैं—स्वर उनका थरथरा रहा है, जैसे कि साधारणतया नशे में थरथराने लगता है।]

— : मुंडू, ओ मुंडू

[ हरचरण रसोई-घर से भागा हुआ आता है। हाथ लिथडे हुए हैं। शायद बर्तन मलता मलता उठकर भाग आया हो।]

— : जी !

*बसन्तलाल* :—(दस रुपये का नोट फेंकते हैं। ) जा भाग कर बाज़ार से कैंची की एक डिबिया ले आ।

[ नोट देखकर माँ चौंकती है, सूत का तार टूट जाता है, और वह योंही चर्खे की हत्थी घुमाये जाती है। नौकर नोट उठाकर जाता है। पंडित बसन्तलाल अपनी पत्नी को सम्बोधित करते हैं—वैसे ही झूमते हुए, खुशी के पखो पर जैसे उड़ते हुए :—]

वसन्तलाल : मैं कहता हूँ हंसू की माँ, माँग लो आज मुझ से जो कुछ माँगना चाहती हो, मैं तुम्हारी प्रत्येक इच्छा आज पूरी कर दूँगा।

[ कुर्सी में धँस जाते हैं, टाँगें तिपाई पर रख लेते हैं—माँ चर्खा कातना छोड़ देती है और अविश्वास से हँसती है।

पंडित वसन्तलाल टाँगें फिर नीचे करके उसकी ओर मुड़ते हैं ]

— : तुम मजाक समझती हो, मैं सत्य कहता हूँ। मुझे तुम मदमत्त मत समझो। माँगो!

[ उठकर खड़े हो जाते हैं और झूमते और लड़खड़ाते हैं। ]

— : माँगो मैं सब कुछ दूँगा।

माँ : ( विषाद से हँसती है ) मैं क्या माँगूगी।

( सूत का तार जोड़ने का प्रयास करती है। )

वसन्तलाल : गहना, कपड़ा, सुख, आराम कुछ भी माँगो, तुमने आयु भर मेरे साथ दुख पाया है, कहो तुम्हें गहनों कपड़ों से लाद दूँ।

माँ : ( स्वर आर्द्र हो जाता है ) मैंने बहुतेरे गहने कपड़े पहन लिये, ( सजल हँसी से ) अब तो यही अभिलाषा है कि आपके चरणों में संसार छोड़ दूँ।

वसन्तलाल : संसार छोड़ दो ' 'पागल ! (हवा को हाथ से चीरते हैं और इस प्रयास में गिरते-गिरते कुर्सी पर धस जाते हैं। ) संसार-

सुख के उपभोग का अवसर तो अभी आया है। (सहसा आँखे भर कर) मैंने तुम्हे बड़े दुख दिये—मारा पीटा, गहने कपड़े से तंग किया (सिसकने लगते है।) पैसे पैसे को मोहताज रखा, बनवाकर तो क्या देता उल्टा तुम्हारी चीजे तक बेच डालता रहा (सहसा आँखे पोछकर जोश मे) किन्तु अब मैं सब बातोकी कसर निकाल दूँगा। मै अब तुम्हें इतना सुख दूँगा (और भी जोश से) इतना सुख, कि तुम्हे इच्छा न रहेगी। गहने, कपड़े, जितने चाहो पहनो ! जिस तीर्थ की चाहो, यात्रा करो !! और जितने ब्रह्मणों और ब्राह्मणियों को चाहो भोजन खिलाओ !!! कितनी देर से तुम तीर्थ-यात्रा करने की इच्छा प्रकट कर रही हो, देखो कोई तीर्थ न रह जाय, फिर न कहना कि अमुक स्थान को देखने की अभिलाषा रह गई।

[ माँ निर्निमेष किन्तु अविश्वास भरी दृष्टि से चुपचाप उनकी ओर देखे जाती है। )

— : हाँ कोई ऐसा तीर्थ नहीं, कोई ऐसा स्थान नही जो मैं तुम्हे न दिखा दूँ और तुम्हें दान-पुण्य का जितना शौक है वह सब निकाल लो। जितना चाहे दान पुण्य करो।

( फिर टाँगे तिपाई पर रख लेते हैं। )

माँ : ( अविश्वास और व्यग से ) मैंने बहुतेरा दान-पुण्य कर लिया है।

*वसन्तलाल* . ( नशे मे झूमते हुए ) मै कहता हूँ, एक लाख रुपये मै केवल तुम्हारे नाम लगाने जा रहा हूँ।

*माँ* : ( स्तम्भित ) लाख !

*वसन्तलाल* : एक लाख इन कम्बख्त लड़को को दे दूँगा।

*माँ* : लाख !

*वसन्तलाल* : एक लाख में मे चाननराम, हंसराज, बनारसी दास ।

*माँ* : लाख . लाख लाख आप शायद

*वसन्तलाल* . ( जोश से उठकर ) तुम्हे विश्वास नहीं आता ( जेब से तार निकालते हैं। ) तीन लाख की लाटरी मेरे नाम निकली है। .

*माँ* . ( भौंचक्की सी ) तीन लाख की !

( उठ कर खड़ी हो जाती है। )

— : आप शायद अधिक '' '

*वसन्तलाल* . ( कागज को हवा मे फहराते हुए ) यह देखो तार। मैंने दीनदयाल मे दस हजार रुपया लिया है। जब तक लाटरी का रुपया वसूल नहीं होता तब तक के लिए। पाँच हजार मैं चाननराम को दे दूँगा. उसकी लड़की का विवाह है। मैं उसका अहसान नहीं भूल सकता ( सहसा आँखे भर कर ) कम्बख्त इन लड़कों ने जब मेरा साथ छोड़ा तब उसने मेरी कितनी सेवा की ( आँखे पोछकर ) पर पूत कपूत होते है, पिता कुपिता नहीं होते. मैं इन कम्बख्तों के नाम एक लाख लगा दूँगा। लाख तुम ले लो । बाकी लाख मे मैं जो चाहे

करूँ। मैंने तुम्हें कहा था न कि लाटरी इस बार मेरे नाम अवश्य आयेगी।

*माँ* : ( मन ही मन से भगवान सत्यनारायण को प्रणाम करके ) मैंने भगवान सत्यनारायण की कथा कराई थी।

( चर्खे के ऊपर से गुजर कर उनके पास आ जाती है।)

*बसन्तलाल* . तुम अब सर्वनारायणों की कथा कराना !

[ चलते हैं, फिर रुककर पगड़ी उठाते है, उसी तरह बगल में दे लेते हैं, और मूछों पर ताव देते हुए दरवाजे की ओर बढते हैं। ]

*माँ* : ( साथ साथ जाती हुई ) किधर चले, कुछ पल तो बैठें, आप. . .

*बसन्तलाल* : मुझे चाननराम से मिलना है, उसकी लड़की का विवाह है. . .

*माँ* : ( आर्द्र कंठ से ) दयालचंद का भी आपको कभी खयाल आया।

*बसन्तलाल* : दस हजार रुपया उस कम्बख्त के ढूँढ़ने पर खर्च कर दूँगा। वह मेरा लड़का इन सब से अच्छा था... आज्ञाकारी और होनहार !

*माँ* : सब उसकी बुद्धि की प्रशंसा करते थे।

*बसन्तलाल* : वह पाताल मे भी चला जाय तो मैं उसे ढूँढ़ लाऊँगा।

*माँ* : लेकिन आप इस को तो आ लेने दें।

*बसन्तलाल* : उस कम्बख्त को मैं माल पर दुकान खुलवा दूँगा।

*माँ* . आप की कैंची की डिबिया . ..

वसन्तलाल : नौकर को शौक है, उसे कहना पीले.. ..

( चले जाते हैं। )

[ माँ मुड़ती है, खुशी से चेहरा दुगना हो गया है। इधर उधर देखती है कि कहीं भगवान की मूर्ति हो तो सिर झुकाये। पर वह तो बरामदा है, वहाँ भगवान की मूर्ति क्या, चित्र भी नहीं। आखिर आकाश की ओर देख कर नतमस्तक हो जाती है, भगवान आकाश में जो बसते हैं, इसीलिए। ]

— : भगवान तेरी लीला अपरम्पार है! तूने जिस प्रक मेरी सुनी, उसी प्रकार सब की सुन। मैं सब से पह तेरा प्रसाद बाँटूँगी।

( नौकर कैंची की डिबिया लिये प्रवेश करता है। )

नौकर : माँ जी कैंची . . .

माँ : डिबिया वहीं रख ले और जा पाँच रुपये के लड चौक से ले आ। ताजे बनवा कर लाना। मैं पा पर बैठी होऊँ तो मुझे न बुलाना। भगवान को प्रसा लगाना चाहती हूँ मैं।

[ नौकर उलटे पाँव वापस चला जाता है और ; मा बायीं ओर के, सामने कमरे में प्रवेश करती है।

कुछ क्षण बाद डा० हंसराज घबराये हुए दाखिल होते हैं और अपनी पत्नी को आवाज़ देते हैं। ]

डा० हंसराज : कमला, कमला

[ कोई आवाज नही आती।

डाक्टर साहब 'कमला कमला' आवाज देते हुए सब कमरों मे झाँकते हैं और फिर शायद पाठ करती हुई माँ से सकेत पाकर स्नानगृह के दरवाजे पर आ खडे होते हैं और किवाड पर टिकटिक करते हुए आवाज देते हैं। ]

— : कमला कमला !

[ किवाड़ खोल कर कमला अन्दर से निकलती है। खुले खुले चमकीले बाल उसके कंधों पर बिखरे हैं। चेहरा निखरा हुआ है और श्वेत साड़ी पहन रखी है। कधो पर बालो के नीचे एक तौलिया है।

पीढी पर रखा हुआ किरोशिया और आधा बुना मेजपोश उठा लेती है और किरोशिया चलाने लगती है। ]

डा० हंसराज : तुम्हे हो क्या गया ? इतनी आवाजें मैंने दी

कमला : मैंने नल छोड़ रखा था। केश

डा० हंसराज : तुम्हे पता नहीं, पिता जी के नाम तीन लाख की लाटरी निकल आई है।

( कमला अवाक खड़ी रह जाती है। )

डा० हंसराज : सच, तीन लाख की। तुम्हे याद है न एक बार तुमने आटा लाने के लिए दस रुपये उन्हे दिये थे।

अरे उस दिन, जब चचा चाननराम यहाँ आए हुए थे। उस दिन जी, जब कैलाशपति भी यहाँ था और वे आटा लाने के बदले लाटरी का टिकट खरीद लाये थे।

*कमला* : (बुनना छोड़कर) वे रुपये तो हमारे थे। लाटरी का रुपया तो हमें मिलना चाहिए।

*डा० हंसराज* : (विवशता से) लेकिन डर्बी वाले तो इस बात को नहीं जानते।

*कमला* : वे लाख न जानें। किन्तु पिता जी का उसका आधा हमें देना चाहिए। यदि मैं रुपये न देती तो वे टिकट कहाँ से खरीदते।

*डा० हंसराज* : तुम तो मूर्ख हो।

[सिर कुरेदते हुए घूमते हैं। कमला शायद 'मूर्ख' की उपाधि पाकर ही संतुष्ट हो गई है। इसलिए वह दीवार के साथ ही लगी चुपचाप मेजपोश बुनती रहती है]

*डा० हंसराज* : (सब बरामदे का एक चक्कर लगाकर, 'तुम क्यों दुबले नगर के अंदेशे' के से स्वर में) मैं कहता हूँ, वह चाननराम पिता जी का सब रुपया हजम करके दम लेगा। मुझे निहालदास ने बताया, आते आते कहीं उसकी दुकान पर गप हाँक आये होंगे, पाँच हजार वे उन्हें दे रहे हैं। निहालदास कहता था कि वे अभी घर गये हैं, आये थे पिता जी यहाँ?

*कमला* : शायद आये हो, मुझे कुछ आभास तो होता है। लेकिन मै तो स्नान-गृह मे थी, और नल मैंने छोड़ रखा था और माँ चर्खा कात रही थी, शायद इस सब के शोर मे मुझे सुनाई नहीं दिया। माँ से पूछा आपने ?

*डा० हसराज* : वे पाठ पर बैठी हैं।

[ डा० हसराज चुपचाप, कमरे के पीछे हाथ रखे, बरामदे का एक और चक्कर लगाते हैं, फिर रुककर :—

तुम मानी नहीं तब, नहीं यदि उन्हे यहाँ से न जाने दिया जाता तो कितना अच्छा होता !

*कमला* : ( तिनक कर )मै नहीं माना, मैंने तो कई बार कहा कि आखिर आप के पिता हैं, उन्होने पढ़ाया लिखाया तो आप इतना कमाने के योग्य हुए, किन्तु आपने सदैव डांट बता दी। आप स्वयं नहीं चाहते थे।

*डा० हसराज* : मै न चाहता था ! जब वे शराब पिये आते थे तो उनकी गालियाँ किसे अखरती थीं।

*कमला* : और जब वे कीचड़ से सने हुए जूते लिये, खुले गले, नंगे सिर, झूमते झामते दुकान मे आ जाते थे तो कौन तिलमिलाता था ?

*डा० हसराज* : लेकिन तुम्हीं को तो उनका कई कई मेहमानो को लेकर आ जाना और उन सब के लिए खाना तैयार करने का तानाशाही आदेश देना अखरता था।

*कमला* : और आपको ही तो उनका रोगियों के सामने
नाम लेकर पुकारना बुरा लगता था।

*डा० हंसराज* : तुम मेरे साथ अन्याय करती हो।

*कमला* : आप मेरे साथ अन्याय करते हैं। यही दस रुप
याद है न आपको.. मैंने आटा लाने के लिए दि
और आपने दस बातें बनाई थीं।

[मटकती हुई दाये कमरे में जाती है। बगु
की भाँति गुरु प्रवेश करता है।]

*गुरु* : भाई साहब, सुना आपने, पिता जी के नाम तीन ल
की लाटरी निकली है (मुंह बाये और आँखें फा
तीन लाख की डर्बी की लाटरी! राज का बड़ा भ
उनसे मिलने के लिए चचा चाननराम के
गया था।

*डा० हंसराज* : इंटरव्यू करने के लिए?

*गुरु* : जी! दो बार तो वे बात ही नहीं कर सके। गुट
थे। तीसरी बार वह गया तो अपनी अलसायी,
माती, रक्त वर्ण, आँखें खोल उन्होंने उसे अ
पास बुलाया और उसके मुँह पर एक जोर से च
लगा दी और फिर जेब से एक सौ का नोट निक
कर उसके सामने फेंक दिया कि जा कमबख्त दो
दिन ऐश उड़ा, क्या जरा जरा सी खबरों के लि
मारा मारा फिरता है।

हंसराज : ( चौंक कर ) सौ रुपया दे दिया ( जिस कमरे में कमला गई है, उधर को देख कर ) मैं कहता हूँ, यह तीन लाख रुपया इसी तरह उड़ जायगा ( फिर गुरु की ओर मुड़कर ) गुरु तुम जाओ, तनिक हरिनाथ को बुला लाओ।

[ गुरु चलना चाहता है, डा० हंसराज उसे फिर आवाज देते हैं। ]

— : और देखो, विन्द्रा के यहाँ से देव को टेलीफोन कर दो। यह लो एक रुपया, कैलाशपति को तार दे दो कि जिस प्रकार भी हो सके वह आज रात यहाँ पहुँच जाये।

[ रुपया निकालकर उसकी ओर फेंकते हैं, गुरु उसे उठाकर चला जाता है और डाक्टर साहब फिर सिर कुरेदते हुए घूमने लगते हैं और आप ही आप खदबदाते हैं। ]

— : किसी न किसी तरह उन्हें यहाँ ले आना चाहिए।

( फिर घूमते हैं, फिर रुककर :— )

— : लेकिन ले कैसे आयें ?

[ कमला, पूर्ववत् किरोशिये से मेजपोश बुनती हुई, एक कमरे से निकल कर दूसरे कमरे को जाती है, बुना हुआ मेजपोश लटकता जा रहा है...डाक्टर साहब उसके पास जाते हैं। ]

— : कमला !

कमला : ( रुककर और मुड़कर ) कहिए !

डा० हंसराज : ( और भी पास जाकर, तनिक भेद भरे तथा अनुनय स्वर में ) देखो जो हुआ सो हुआ, लेकिन बुद्धिमा वही है, जो बिगड़ी हुई बात बना ले ।

कमला : ( नीची निगाह किये किरोशिया चलाती हुई ) इसमें क संदेह है, बिगड़ी हुई बात बनानी ही चाहिए ।

( चलती है । )

डा० हंसराज : ( साथ साथ चलते हुए ) मैं चाहता हूँ कि पिता जी व यहाँ ले आऊँ ।

कमला : तो ले आइए !

डा० हंसराज : लेकिन ले आने से काम न चलेगा, उन्हें यहाँ रखन होगा ।

कमला : तो रखिए !

डा० हंसराज : रखने की बात नहीं, उनका मन बहलाना होगा ।

कमला : तो बहलाइए !

( गुरु के कमरे में दाखिल हो जाती है । )

डा० हंसराज : ( बाहर खड़े-खड़े ) कमला !

[ कमला मुड़कर चौखट में खड़ी हो जाती है, चट्टान की भाँति ..दोनों एक निमिष के लिए एक दूसरे की ओर देखते हैं ।

डा० हंसराज : ( स्वर को तनिक विवश, तनिक विनम्र बनाकर ) देखो मेरी बात का गुस्सा न किया करो ! मेरा दिमाग़ बड़ा

परेशान रहता है। खर्च दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और आय उतनी है नहीं और सरकार के बढ़ते हुए करों के कारण दुकान और मकान के मालिक किराया बढ़ाने की सोच रहे हैं और फिर यह कम्बख्त लाहौर! नित्य कोई न कोई अतिथि आया रहता है और पोजीशन रखने के लिए महँगे भाव चीजें खरीदनी पड़ती हैं।

[ कुछ क्षण के लिए यह देखने के हेतु कि उनकी इस विवशता का प्रभाव उनकी पत्नी पर पड़ रहा है या नहीं, उसके चेहरे की ओर देखते हैं फिर :— ]

ला० हंसराज : कैसी विडम्बना है यह कि जिनको आवश्यकता है, उन्हें लोहू पानी एक करने पर भी पैसा नहीं मिलता और जिन्हें जरूरत नहीं, उनके पास आप से आप चला आता है।

( फिर पत्नी के मुख की ओर देखते हैं। )

— : उनको व्यर्थ उड़ाने के लिए तीन लाख मिल जायँ और हमें उचित खर्च के लिए तीन सौ भी न मिलें!

[ विवशता, लाचारी और निराशा से सिर झुका लेते हैं। चट्टान पिघलकर अपना स्थान छोड़ देती है। ]

कमला : ( बाहर आकर ) आप यों ही जी छोटा करते हैं। दूसरे के नर्म-गर्म विस्तरों को देखकर कोई अपनी दरी दुलाई तो नही उठा देता।

डा० हंसराज : ( लगभग गर्ज कर ) दूसरों के...मैं अपने पिता की बात कर रहा हूँ। उनके धन पर क्या हमारा कोई अधिकार नही ? उनके दुख-सुख मे क्या हमारा कोई भाग नहीं ? और फिर मैं कहता हूँ कि अपने हक और अपने हिस्से की बात छोड़ो, मैं तो उनके लाभ की बात सोच रहा हूँ। यदि इस समय उन्हे न बचाया गया तो वे तबाह हो जायंगे। परमात्मा ने यदि उन्हे एक अवसर दिया है तो उन्हे इसका पूरा लाभ उठाना चाहिए। उसका दुरुपयोग उन्हें न करना चाहिए। और वे जिस रफ्तार से रुपया उड़ा रहे हैं, उस तरह तो तीन लाख, तीन वर्ष क्या, तीन महीने नहीं रहेगा। तुमने सुना नहीं, उस राज के भाई को उन्होने एक सौ रुपया केवल एक चपत खाने के बदले दे दिया।

( देव चुपचाप प्रवेश करता है। )

देव . केवल एक चपत, परमात्मा की सौगन्ध, सौ रुपये के लिए तो आदमी मां जूते खा सकता है।

डा० हंसराज : और भला नही क्या ?

( कमला हंसती है। )

देव : ( उसी सर्दियों के सूर्य की सी मुस्कान के साथ ) हँसी की बात नहीं भाभी, तुम नहीं जानती डिलिवरी

ऑचक्ष मे कितना काम होता है नये विधान के अनुसार दफ्तर तो दूर, दुकानो के नौकरों तक को इतवार की छुट्टी होती है, किन्तु मुझे प्रायः रविवार को सुबह के पॉच बजे से संध्या के सात बजे तक ड्यूटी देनी होती है। साल के बारह महीने, महीने के तीस इक्तीस दिन और एक दिन के आठ घटे.. कहने का मतलब यह है कि वर्ष भर मे लगभग दो हजार नौ सौ बीस घटे अनथक काम करने के बाद मिलता क्या है? चालीस रुपया मासिक के हिसाब से मात्र ४८० रुपया.. फिर यदि १०० जूते खाने के बदले सौ रुपया मिल जाय तो क्या बुरा है।

डा० हसराज : लेकिन मैं पूछता हूँ—हरिनाथ क्यो नहीं आया? उसे तो तुम से पहले आ जाना चाहिए था। मैंने गुरु से कहा था कि वह उसे भेजकर तुम्हे टेलीफोन करे। और तुम ही इतनी जल्दी कैसे आ गये, क्या लारी पर आये थे?

देव : आया तो मैं लारी पर ही हूँ, किन्तु टेलीफोन मुझे नहीं मिला।

डा० हसराज : तो तुम्हे लाटरी का कैसे पता चला?

---

क्षडाकखाने का एक विभाग जिसमें बाहर से आए हुए पत्र बॉटने के लिए डाकियो को दिये जाते हैं।



५

देव : शायद पिता जी इसमें से चचा चाननराम को
हजार रुपया देने वाले हैं। ईर्षा-वश उनके भा
मुझे टेलीफोन किया, कि यदि तुम लोगों ने
हिम्मत न की तो सब खत्म हो जायगा।

डा० हंसराज : इसमें क्या संदेह है, एक बोतल पिला कर कोई
जी से तीन लोक का राज्य लिखवा सकता है
फिर चची

देव : एक ही विष की गाँठ है। ऊपर से जितनी भोली
अन्दर से उतनी ही खोटी हैं। आकृति उनकी जि
सुन्दर है, हृदय उनका उतना ही कुरूप है। मी
मीठी बातों से मोह लेना वे खूब जानती हैं
फिर पिता जी, उनकी दुर्बलता तुम जानते ही
मीठी बातें करके, उन्हें चाहे कोई लूट ले, उनके
तक उतार ले!

डा० हंसराज : छै महीने घर रखने के बदले पाँच हजार
हथिया लिया और लूटना किसे कहते हैं?

[दोनों कमरे में घूमने लगते हैं। एक कुर्सी
रसोई-घर तक और दूसरा कुर्सी से कमरे तक। फि
दोनों आमने सामने आकर खड़े हो जाते हैं।]

डा० हंसराज : (उसी कटुता से) देखो न, तुम उस डाकखाने
अंधेरे कमरे में, दिन के समय भी बिजली की रोश
में चिट्ठियों के साथ माथा फोड़ते हो, यदि जीवन
तुम्हें कुछ स्टार्ट मिल जाय तो तुम क्या कुछ न

लो। अपने ही विभाग में तुम ऊँचे से ऊँचे पद पर आसीन हो सकते हो। यदि पिता जी तुम्हें दस हजार .

देव : उन्हें पहले अपने नये पुत्रों को तो स्टार्ट दे लेने दे। बनारसीदास को वे अपना सातवाँ पुत्र कहते हैं और अब तो चचा चाननराम भी पुत्र बन जायेंगे और दीनदयाल भी और जाने कौन कौन पुत्र बन जायें . और मैं तो मात्र चौथा हूँ ..

[ हरिनाथ प्रवेश करता है—बाल बिखरे, डाढ़ी बढ़ी, धोती और कमीज़ कदरे मैली। ]

हंसराज : ( उसी कटुता से ) अब हरिनाथ को ही ले लो। जीवन-यापन के लिए पत्रिका और प्रेस का रोग लगा बैठा है, और सूरत तो देखो, क्या बनाई है? क्या कम्पोजिटरों के साथ माथापच्ची करना इसके बस की बात है? प्रूफ पढ़ना और अनुवाद करना क्या इसका काम है? यह ठहरा कवि-हृदय, इसे चाहिए था कि यह भ्रमण करता, श्रीनगर, पहलगाँव, मंसूरी, नैनीताल जैसे नगरों की सैर करता। समुद्र तट देखता और फिर शान्ति-निकेतन ऐसे स्थान में जम जाता और अमर काव्यों की रचना करता।

हरिनाथ : ( म्लान हँसी से ) अरे भाई, ऐसे भाग्य कहाँ?

हंसराज : इसमें भाग्य की कौन सी बात है? तुम्हें शायद

मालूम नही—पिता जी को तीन लाख की त
आई है।

*हरिनाथ* (आखे फट जाती है और मुँह खुल जाता है)
लाख की ?

*डा० हंसराज* : तीन लाख की। यही तो मैं कहता हूँ (लगभग भाष
देते हुए) यदि आज वे तीन लाख रुपये वृथा जाने
बदले किसी अर्थ लग जायें तो क्या नहीं हो सकता
यह कैलाशपति क्या टिकट-कलेक्टर बनने योग्य है
उसे तो पुलिस इंस्पेक्टर होना चाहिए था; कुछ रु
खर्च करके उसे अब भी सीधा सब इंस्पेक्टर भर
कराया जा सकता है। गुरु को विलायत भेजा
सकता है और यदि वह विलायत चला जाय
अपनी प्रखर बुद्धि के साथ क्या कुछ नहीं कर सकता
कौन उसे आई० सी० एस० बनने मे रो
सकता है ?

*देव* : विलायत भेजने से लाभ ? वहाँ तो दिन रात
बारी होती रहती है।

*डा० हंसराज* : (खीझकर) विलायत न सही हिन्दुस्तान में तो
बारी नहीं होती।

*देव* : पर सरकार ये पद प्रतियोगिता से न भरेगी,
नामजदगिया करेगी।

*डा० हंसराज* : तो और भी आसान है, नामजदगियां पैसे वालो
होती है। मैं सच कहता हूँ, यदि घर मे एक भी आ

सी० एस० हो जाये तो सारे का सारा वंश तर जाता है ।

*हरिनाथ* : ( जो काशमीर तथा नैनीताल की सैर कर रहा है ) इसमें क्या संदेह है ?

*डा० हंसराज* : और मैं क्या माल पर दुकान नहीं ले जा सकता ? ये डाक्टर माथुर; कपूर, भला क्या मुझ से योग्य हैं ? पैसा चाहिए पैसा, माल पर उन जैसा सैनीटोरियम क्या मैं नहीं खोल सकता ?

*कमला* . ( जो इस समय तक चुपचाप मेजपोश बुन रही थी ) मैं कहती हूँ, मैं चली जाऊँगी, उन्हें यहाँ ले भी आऊँगी । शेष आप का काम है कि उन्हें फिर न भटकने दें ।

*डा० हंसराज* : ( उल्लास से ) दिस इज़ लाइक ए गुड गर्ल ।*

*हरिनाथ* : तुम्हारे बिना यह काम किसी से न होगा, भाभी ।

[ माँ पाठ करने के बाद माला हाथ में लिये हुए ही बाहर निकलती है । ]

*माँ* : हरचरण आया नहीं अभी ।

[ हरचरण लड्डुओं की टोकरी लिये दाखिल होता है । ]

*हरचरण* : मैं आ गया माँ जी !

*गुरु* : यह लड्डू कैसे हैं ?

---

* This is like a good girl यह बात है अच्छी बीबी की ।

*माँ* : भगवान का प्रसाद बाँटूंगी।

*डा० हंसराज* : तो लाओ इसी बात पर मुँह तो मीठा कि जाय।

*माँ* : (दरवाजे की ओर जाती हुई) न, न, पहले भग को भोग तो लगा लिया जाये। (नौकर से) आ हरचरण मेरे साथ मन्दिर तक, भगवान

*हरिनाथ* : (कवि) हम से बड़ा भगवान कहां है।

(सब हँसते हैं।)

(पर्दा गिरता है।)

( पर्दा कुछ क्षण बाद फिर उठता है । )

[ दृश्य वही है। वही बरामदा और उस मे का वही सामान। चारपाई वैसे ही बिछी है और उस पर चादर ताने वैसे ही कोई सोया हुआ है। खुर्राटे वह नही ले रहा और नीद मे बेहोश पड़ा दिखाई देता है ।

कुर्सियों मे भी कोई परिवर्तन नही हुआ । वैसे ही तिपाई के दोनो ओर पड़ी हैं। हाँ, दो और कुर्सिया सामने को ओर रख दी गई है, रसोई-घर से जरा जरा सा धुआँ भी निकल रहा है, यद्यपि उसमें से अब सुगंधि नही आती, क्योंकि अन्दर चूल्हे मे अनवरत सुलगने वाले उपलो के धुएँ ने पडित

बसन्तलाल के निरन्तर गुड़गुड़ाने वाले हुक्के के धुएँ से मिलकर उसे परान्त कर दिया है।

पर्दा उठने पर, हम दायीं ओर की कुर्सी पर पंडित बसन्तलाल को नशे में मद-मत्त, हाथ में खाली हुक्के की नै लिये, टाँग पर टाँग धरे, बैठे देखते हैं। चिलम शायद भरे जाने के लिये चली गई है। उनके सामने की कुर्सी पर डा० हंसराज बैठे हैं और आकृति उनकी उस कुत्ते की सी बनी हुई है, जो मालिक को खाना खाते देख कर दुम हिलाता हुआ, विनम्र, खुशामदी, लालसाभरी दृष्टि से ताकता हुआ, घुटने टेक कर बैठ जाता है कि तनिक मालिक का ध्यान हो तो दुम हिला दे। उस में और इन में अन्तर केवल इतना ही है कि इन के दुम नहीं, जिसे ये हिला सकें।

दो बार खाली हुक्के को ही गुड़गुड़ा कर पंडित बसन्तलाल चीखते हैं —]

*पं० बसन्तलाल* : मर गया वहीं चिलम के साथ!

[स्वर की तीव्रता के बावजूद उस में वह थथलाहट है जो नशे के आधिक्य की सूचक है।*

रसोई-घर से कैलाश की आवाज आती है —]

---

*इस सारे दृश्य में उन की यह थथलाहट जारी रहती है और यद्यपि ज्यों-ज्यों अधिक पीते हैं, अधिक मुखर होते जाते हैं, किन्तु थथलाहट भी उनकी बढ़ती जाती है।

*कैलाशपति* : आया पिता जी !

[ और कुछ क्षण बाद कैलाशपति रसोई-घर से चिलम हाथ में लिये उस में फूंके मारता हुआ आता है।

आश्चर्य कि उस की हिंस्र-दृष्टि का कहीं ढूंढे से भी पता नहीं चलता और बर्बर सा न दिखाई देकर वह निरीह सा दिखाई देता है। सिर पर उस के लम्बे-लम्बे बाल नहीं और भवों पर वह तनाव नहीं। सिर पर मशीन फिरी है और जैसे भवों पर भी मशीन फिर गई है, क्योंकि मस्तक पर एक भी तो सिलवट नहीं। चुपचाप बड़े विनम्र-भाव से चिलम लाकर हुक्के पर रख देता है।

प० बसन्तलाल एक कश लगाते हैं और गुर्राते हैं — ]

*प० बसन्तलाल* : ईडियट* ! तुझे चिलम भरने की भी तमीज़ नहीं, बी० ए० पास हो गया है।

[ कैलाश आँखें उठाता है, जो शायद फरियाद कर रही हैं कि पिता जी, मैं बी० ए० में चिलम भरना नहीं सीखता रहा। तभी डाक्टर साहब उचक उठते हैं और अपने पिता के हाथ से चिलम ले लेते हैं। ]

---

*Idiot ( मूर्ख )

डा० हंसराज : सोलह आने मूर्ख हो। भला कहीं इस तरह चिलम भरी जाती है। देखो, उपले की आग को इस तरह नहीं रखा जाता है। उसके छोटे-छोटे टुकड़े करके रखे जाते हैं और तुम ने तमाखू भी ठीक ढंग से न भरी होगी (पिता से) मैं जाता हूँ, अभी और चिलम भरके लाता हूँ।

[ चिलम लेकर रसोई-घर में चले जाते है। कैलाशपति कुर्सी पर बैठने लगता है। ]

पं० बसन्तलाल : तुम जरा मेरी टागे दबाओ!

[ टाँगे तिपाई पर रख लेते है और पीछे को लेट जाते है। कैलाशपति मौन रूप से पिता की टाँगे दबाने लगता है।

देव प्रवेश करता है—सिर बिलकुल घुटा हुआ है और चोटी खडी है, कैलाशपति उसकी ओर देखता है और हँसी को बरबस रोकता है। ]

— : वाह देखो, अब कितने अच्छे लगते हो! हमेशा सिर घुटा कर रखा करो! दिमाग ताजा रहता है; बुद्धि प्रखर होती है और फिर नहाने धोने मे आराम रहता है (तनिक जोश से) और फिर यह पुरुषत्व का चिह्न है। पुरुषों को पुरुष दिखाई देना चाहिए और शेरो की भांति गर्जना चाहिए। (हँसते है।) अन्य देशों मे तो स्त्रियां पुरुष बनती जा रही हैं

और यहां पुरुष स्त्रियां बनने मे गर्व अनुभव कर रहे है। जानते हो चोटी का क्या महत्व है?

[ दोनों मौन रहते हे। केवल उनकी प्रश्नसूचक दृष्टि अपने पिता के चेहरे पर जम जाती है। ]

पं० बसन्तलाल : चोटी हिन्दुत्व की निशानी है, हिन्दुओ का अपना जातीय चिह्न है (खाली हुक्के को गुड़गुड़ाते हैं।) फिर सुनता हूँ मनुस्मृति मे यह लिखा है कि चोटी बिजली के वेग को रोकती है। यदि कहीं मनुष्य पर बिजली गिरे तो चोटी के मार्ग से शरीर मे होती हुई धरती मे प्रवेश कर जाती है।

देव : शायद यही कारण है कि प्राचीन काल मे ब्रह्मचारी नंगे सिर रहते थे और चोटी को गांठ देकर रखते थे कि वह खड़ी रहे।

कैलाशपति : बिलकुल बिजली के कण्डक्टरो की भांति जो ऊँची ऊंची इमारतो पर लगा दिये जाते है—जी वही लोहे के छोटे छोटे तीर अथवा त्रिसूल से—ताकि यदि बिजली गिरे तो इमारत सुरक्षित रहे।

देव : (जिसे अपनी सूझ और स्मृति पर कम गर्व नही) और फिर दादा जी कहा करते थे कि प्राचीन काल के ऋषि मुनि इसी चोटी से रेडियो का काम लेते थे और बैठे बिठाये समस्त संसार की खबरे सुन लेते थे। संजय ने हस्तिनापुर में बैठे-बैठे महाराज

धृतराष्ट्र को कुरुक्षेत्र के युद्ध की जो, खबर सुनायी, वह इस चोटी के कारण ही तो थी।

[ अपनी इस सूझ तथा स्मृति की प्रशसा पाने के विचार से अपने पिता की ओर देखता है, जो केवल खामोशी से एक-दो बार हुक्का गुड़गुड़ाकर दाद देते हैं।

डा० हसराज चिलम लिए रसोई-घर से निकलते हैं। ]

*डा० हसराज* : ( कैलाशपति की ओर देख कर ) देखो अब चिलम भर कर लाया हूँ—पहले तमाखू को भली-भांति मल कर उसकी टिकिया बनायी, फिर उसे कंकर पर रखकर, उस पर गुड़ के चूरे की हल्की सी तह जमायी, उस पर फिर और तमाखू बखेरा, अँगूठे से उसे धीरे धीरे जमाया, नीचे से कंकर को तनिक हिला दिया, ताकि जम न जाय। फिर उस पर उपलों की आग रखी—घंटे भरसे पहले चिलम बुझ जाय तो नाम नहीं।

[ प्रशसा की याचक निगाहों से अपने पिता की ओर देखते हुए चिलम हुक्के पर रख देते हैं।

प० बसन्तलाल हुक्का गुड़गुड़ाते हैं, डा० हसराज उनके सामने की कुर्सी पर बैठ जाते हैं; और

यद्यपि कैलाशपति तिपाई पर टिकी हुई उन की टाँगे दबा रहा है, वे पाँव दबाने लगते हैं।

कुछ क्षण तक हुक्के की गुड़गुड़ का शब्द बरामदे की निस्तब्धता को भग करता रहता है और धुएँ के कश छत की ओर जाते हुए, रसोई-घर से उठने वाले धुएँ से मिल कर आकाश की ओर जाते हैं।

डा० हसराम चुपचाप से खड़े देव को सकेत करते हैं कि वह पीने का सामान लाये और स्वय अपने पिता के पाँव तनिक और स्निग्धता तथा श्रद्धा से दबाते हुए मतलब की बात आरम्भ करते हैं। ]

*डा० हंसराज* · प० रघुनाथ कल फिर आया था।

*[डा]० बसन्तलाल* ( निपुणता से भरी हुई चिलम के नशे से ऊँघती हुई आवाज मे ) कौन रघुनाथ ?

*डा० हसराज* · जी वही राय साहब चम्पाराम का पुरोहित। देव तथा कैलाश के लिये पूछने आया था, दो बार पहले भी आ चुका है।

*[डा]० बसन्तलाल* : ( तन्द्रिल पलके उठाकर ) कौन चम्पाराम ?

*डा० हसराज* जी वही छावा ही का रहने वाला है—वही जी जिस के पास आप एक बार देव की सिफारिश लेकर गये थे, और जिसने सीधे मुँह बात भी न की थी।

*[डा]० बसन्तलाल* · ( सहसा उठकर ) वह कम्बख्त चम्पाराम .. उस को बिल्कुल 'न' कर दो !

[ देव मदिरा की बोतल और शीशे का गिलास लाता है। ]

डा० हंसराज : ( गिलास में मदिरा डाल कर उन की ओर बढ़ाकर, ( बोतल फिर देव को देते हुए ) यह 'न' करने का समय नहीं पिता जी। इस समय तो बल्कि 'हां' करनी चाहिए। हमारे उस अपमान का, इस से बढ़कर और क्या बदला होगा कि वह अपनी लड़कियों की डोलियां हमें दे।

[ पंडित जी गिलास कंठ में उंडेल कर फिर दे देते हैं, डाक्टर साहब बोतल लेकर, उस से तनिक और उंडेल देते हैं। ]

— : ( बात को जारी रखते हुए ) और फिर चम्पाराम रसूख वाला आदमी है। कैलाशपति को वह सीधा ही सब-इन्स्पेक्टर भरती करवा सकता है। देव का उज्ज्वल भविष्य तथा उन्नति भी इस रिश्ते से सुनिश्चित हो सकती है। और फिर इस आदमी से सम्बन्ध करके और बीसों काम निकल सकते हैं—गुरु को मुकाबले में बैठना है, और उस में भी सिफारिश कम काम नहीं करती।

पं० बसन्तलाल . तो 'हाँ' कर दो।

[ फिर टांगें तिपाई पर रख लेते हैं और पीछे को लेट जाते हैं। ]

डा० हंसराज : ( उनके पाँवों को दबाते हुए ) 'किन्तु हाँ किस तरह कर दें। इतने बड़े आदमी की लड़कियाँ घर में यों ही तो नहीं लायी जा सकतीं। उनके लिए सौ सौ सामान चाहिएँ। मैंने आपसे कहा था कि आप बीस बीस हजार रुपया देव तथा कैलाश के नाम लगा दें। और जब तक हम अपनी कोठी नहीं बना लेते, बाहर एक कोठी लेकर रहें। फिर तो मैं 'हाँ' करूँ भी। नहीं तो यों ही 'हाँ' करके अपना अपमान कैसे करवाऊँ ( गिलास उठाकर उनको देते हुए ) और फिर अभी तो पंडित ही देखकर पूछ गया है, जब स्वयं चम्पाराम आया उसे ज्ञात हुआ कि लड़कों के पल्ले पैसा भी नहीं तो. . .

प० वसन्तलाल : ( सहसा उठ कर और टाँगें नीचे करके ) देव . . .

देव : जी !

प० वसन्तलाल : जाओ मेरी चैक बुक उठा लाओ।

[ देव बोतल तथा गिलास कैलाशपति को देकर भाग जाता है। ]

चम्पाराम को भी मालूम होगा कि वसन्तलाल कोई ऐसा वैसा आदमी नहीं है।

डा० हंसराज : ( रद्दा जमाते हुए ) खुशामद चाटुकारी से प्राप्त किए हुए धन का उसे गर्व है। भाइयों का गला काट कर वह आज धनाढ्य. . .

प० बसन्तलाल : तो हटाओ, उस नीच की लडकियो से हम अपने पुत्रों का विवाह न करेंगे।

( फिर पीछे को लेट जाते हैं और हुक्का गुडगुड़ाते हैं

डा० हंसराज (चौंक कर फिर पांवों को दबाते हुए) विष के मारने को विष महाबली है, पिता जी। धनी का दर्प धन ही से चूर हो सकता है।

[ देव चैक बुक ले आता है। डाक्टर हंसराज हाथ बढ़ा देते हैं। ]

— : लाओ, इधर लाओ।

[ देव चैक बुक डाक्टर साहब को देकर फिर बोतल तथा गिलास थाम लेता है और कैलाश फिर अपने कर्त्तव्य में रत हो जाता है। ][1]

— . (फाउ टेन-पेन निकालकर चैक-बुक खोलते हुए) तो बीस हजार कैलाश के नाम लिख दूं।

( लिखते हैं )

— और देव के नाम। देव तो बड़ा है। उसे दस हज़ार अधिक मिलना चाहिए तीस हज़ार देव को मिलना चाहिए।

[1] यह दृश्य जब तक रहता है पुत्र अपना कर्त्तव्य भली भांति निभाते हैं, डा० हंसराज बहुत देर तक अपने पिता को नशे के बिना नहीं रहने देते। कैलाशपति

प॰ वसन्तलाल : (आँखे बन्द किये पूर्ववत् हुक्का गुड़गुडाते हुए) हाँ. . हाँ उस के नाम तीस हज़ार लिख दो ।

[ डा॰ हसराज लिखते हैं ।
सिर घुटाये, जाँघिये लगाये, तेल की मालिश से शरीर चमकाये कवि हरेन्द्र और भावी आई॰ सी॰ एस॰ गुरु नारायण प्रवेश करते है ।

पं॰ वसन्तलाल : कितने डंड पेल कर आये ?

गुरु : मैंने जी पचास डंड पेले और पचास बैठक निकाली ।

प॰ वसन्तलाल : और तुमने हरि !

हरि : मैं पचीस से अधिक नहीं निकाल सका ।

---

एक बार जो टाँगे दबाने लगा है, तो वही बैठा है । जब वे टाँगे तिपाई पर रख देते हैं, वह उन्हे दवाना शुरू कर देता है । देव जो एक बार बोतल तथा गिलास लाता है तो उन्हे लिये खड़ा रहता है । जब डा॰ साहब उस से लेकर मदिरा गिलास से उँडेल देते हैं तो वह बोतल थाम लेता है, पंडित जी जब गिलास खाली कर लेते हैं तो वह उसे थाम लेता है । दूसरो को भी जब कोई काम नहीं होता तो वे अपने पिता के कंधे अथवा बाजू आदि दबाने लगते हैं ।

पं० वसन्तलाल : ( हुक्के का कश लगाकर ) बस प्रतिदिन दो बढ़ाओ। धीरे धीरे तुम देखोगे कि कुछ भी कठिनाई नहीं लगती। इधर आओ !

[ दोनो झिझकते हुए अपने पिता के समीप जाते हैं। प० वसन्तलाल गुरु की गर्दन पर अपनी कलाई से एक धौल जमाते हैं—इतने जोर से कि गुरु बड़ी मुश्किल से सम्हलता है। ]

पं० वसन्तलाल : हाँ अब तुम बलवान हो रहे हो। लाओ तनिक पंजा।

[ अनिच्छा पूर्वक गुरु पजा देता है। पं० वसन्तलाल उस से पजा लड़ाते हैं। ]

— : मरो

[ गुरु जोर लगाता है, पर पजा मरोड़ना त दूर रहा, हिला तक नहीं पाता। प० वसन्तलाल छोड़ देते हैं। ]

— : पंजा लड़ाने का अभ्यास किया करो। इस से जहाँ हाथ की अंगुलियाँ सुदृढ़ होती हैं, वहाँ कलाई भी सुपुष्ट होती है। जब मैं पढ़ता था तो बड़े बड़ों से पंजा ले लेता था। और फिर यदि किसी की कलाई पकड़ लेता था तो उसे छुड़ाना दुष्कर हो जाता था।

( हरि से ) इधर आओ, देखूँ तुझ मे कुछ बल आया है या नहीं ?

हरि : ( गुरु की गर्दन पर धौल पडते देख कर ही जिस का रग पीला हो गया है। ) जी, अभी क्या आया होगा, मैं तो अभी पच्चीस डड ही मुश्किल से पेल सकता हूँ।

बसन्तलाल : नहीं, इधर आओ !

[ झिझकता झिझकता हरिनाथ पिता के पास आता है, प० बसन्तलाल उस की कलाई पकड़ते है ]

— : छुड़ाओ, जोर लगाओ।

[ बेचारा हरिनाथ भरसक जोर लगाता है, पर छुडा नहीं पाता। तब प० बसन्तलाल झटका देकर उसकी कलाई छोड देते है। ]

— : तुझ मे क्या बल आयेगा कम्बख्त। सारा दिन कविताएँ लिखता रहता है। कविताओ से क्या होगा ? और फिर उनसे, जो तू लिखता है। बलवान बन, बलवान ! डंड पेल, कबड्डी खेल, दौड़ लग, कुश्ती लड़ ! यदि कल तेरी पत्नी को कोई उठाने आ जाय, तो अपने इस तिनके से कोमल शरीर को लेकर तू क्या करेगा, जिसमे न बल है, न साहस। कविता सुना देने मात्र मे तो अत्याचारी पीछे न हटेगा।

(हुक्का गुडगुड़ाकर और खाँस कर) संसार मे सदैव
वाले की भैस होती आई है और लाठी उसके ह
होती है, जिसकी भुजाओं मे बल हो और म
साहस । ( फिर कश लगाते, खाँसते और खँखारते
प्रतिदिन नियमित रूप से व्यायाम किया करो और '
पक्की' खेला करो ताकि तुम्हारा सीना मजबूत हो

डा० हसराज : यह 'सौंची पक्की' क्या बला होती है ?

[ प० बसन्तलाल खड़खडाते हुए उठ
और गुरु के सामने आ खडे होते हैं और अ
बाया पॉव आगे बढाते हैं । ]

— : अपना बायाँ पॉव आगे बढ़ाओ ।

( गुरु अपना पॉव आगे बढाता है । )

— : अब अपनी दोनो हथेलियो मेरे सीने पर मारो ।

[ गुरु झिझकता हुआ अपने दोनों हाथ अ
पिता के वक्ष पर मारता है । ]

— : अब पीछे हटो. मै मारता हूँ । अपने वक्ष
मेरे हाथ लो !

[ पीछे हटकर अपने दोनों हाथ गुरु के व
पर मारते है—इस जोर से कि गरीब पीछे गि
गिरता बचता है । ]

दीनदयाल प्रवेश करता है और गुरु, जिसका सीना केवल एक बार की 'सौंची पक्की' से दर्द करने लगा है, पीछे हट जाता है।

दीनदयाल प० बसन्तलाल ही की आयु का व्यक्ति है। बड़े अच्छे सूट में आवृत है। आकृति उसकी ऐसी है कि उसे देखकर उसके आन्तरिक भावो को जान लेना बडा कठिन है। यद्यपि आयुने उसके चेहरे पर अपनी रेखाएँ बनानी आरम्भकर दी हैं, तो भी वह काफी भरा हुआ है। ओठो की सहज-मुस्कान और स्वभाव की, अभ्यास से पैदा की हुई, विनम्रता ने उस पर एक खौल सा चढ़ा रखा है। केवल उनकी आँखो मे कुछ ऐसी अमानुषिक चमक है, जो उसके इस खौल का भेद खोल देती है, पर उस चमक को पहली नजर में देख लेना साधारण व्यक्ति के बस की बात नहीं। ]

*दीनदयाल :* वाह, खूब अखाड़ा बना रखा है। तुम भी. .. बसन्तलाल... (हँसता है।) तुम्हे सभ्यता कभी न छुएगी।

[ बसन्तलाल गुरु को उसकी निर्बलता पर कुछ कहने ही जा रहे थे कि दीन दयाल को देखकर वापस आकर कुर्सी मे धँस जाते हैं। गुरु गिरता गिरता सम्हल कर 'नमस्कार' करता है, देव के हाथ खाली नही. इसलिए वह बोतल और गिलास

समेत हाथो को मस्तक से लगाकर अभिवादन करता है, हरिनाथ अपने आप को इस वेश मे देख कर घबरा जाता है और 'नमस्कार' करना भूल जाता है केवल डाक्टर साहब सहज-भाव से उठकर 'नमस्कार' करके कुर्सी पेश करते हैं। ]

पं० बसन्तलाल : ( कुर्सी में धँसते हुए ) सभ्यता.. .

[ देव से बोतल और गिलास लेना चाहते हैं। डा० हसराज व्यस्त होते हुए स्वय बोतल और गिलास लेकर पैग बनाकर उन्हे देते हैं।

—— : ( एक ही बार उसे कठ मे उँडेल कर, दीनदयाल का कधा पकड़ कर झकझोरते हुए ) आजकल की सभ्यता मे है क्या ! उसमे साहस कहाँ है? दयानतदारी कहाँ है ? सत्य कहाँ है ? सहिष्णुता, सहानुभूति, दया और कृतज्ञता कहाँ है ? ( गुड़गुडाते है । ) यह सभ्यता दिखावे की सभ्यता है, छल, कपट, और प्रपंच की सभ्यता है यह । आज की सभ्यता है । ( खँखारते और झूमते है । ) रुपये के पर पुत्र को पिता के विरुद्ध खरीद लो, भाई को भाई के विरुद्ध खरीद लो, नौकर को स्वामी के विरुद्ध खरीद लो; मित्र को मित्र के विरुद्ध खरीद लो; देशसेवक को राष्ट्र के विरुद्ध खरीद लो । ( दोनों

को बाज़ू से पकड़ कर झकझोरते हुए ) तुम किस सभ्यता का जिक्र करते हो, आज पैसे के बल पर मैं सारी दुनिया और उसकी सभ्यता को खरीद सकता हूँ। ( टाँगे तिपाई पर रख कर पीछे लेट जाते हैं। ) आज जिस पागल को कोई पूछता नहीं, जिसके मस्तिष्क मे सोलह आने भुस भरा हुआ है, कोई बड़ा आदमी तो क्या क्लर्क तक जिस मूर्ख से बात करना पसन्द नहीं करता, उसके पास आज यदि कहीं से धन आ जाय तो कल बड़े से बड़ा आदमी उसे अपना दामाद बना सकता है। सभ्यता . ( हँसते हैं और नशे मे कुर्सी पर ही झूलते है। ) मैं पूछता हूँ, इसमे हड्डी कहाँ है? स्थायित्व कहाँ है? इस लचलचाती, खोखली सभ्यता की दुहाई देकर तुम मेरा उपहास उड़ाना चाहते हो कम्बख्त .

( हुक्का गुडगुड़ाते हैं। )

नदयाल : ( चतुर ) और तुम्हें इस नंग धड़ंग सभ्यता का मान है। है न?

ततलाल : ( दीनदयाल के जाल मे फँस कर जोश के साथ ) इस मे अपनापन तो है, निजत्व तो है, ( फिर हुक्के का कश

खींचते हैं।) यह चिलम तो बुझ गई। (चिलम को उतार कर देखते हैं।) इन कम्बख्तों को कभी चिलम तक न भरनी आयगी।

[ कैलाशपति वहीं बैठा बैठा उस व्यग्य भरी मुस्कान से डाक्टर साहब की ओर देखता है जो कदाचित यह कह रही है कि यदि मूर्खता का यही मान-दण्ड है तो इस दृष्टि से हम सभी सोलह आने मूर्ख हैं। परन्तु डाक्टर हंसराज उसकी ओर नहीं देखते, चिलम अपने पिता से लेकर वे हरिनाथ की ओर बढ़ा देते हैं। ]

*डा० हंसराज* : इसे भागकर भर लाओ हरि।

[ और वह बड़ी सुकोमल अभिरुचि का सात्विक, परहेजगार कवि, जिसे सिगरेट और शराब के नाम से ही घबराहट होती थी, लपक कर चिलम ले लेता है और रसोई-घर की ओर जल्दी से बढ़ता है। ]

*पं० बसन्तलाल* : (खाली हुक्के गुड़गुड़ाते हुए दीनदयाल से) सुन्दर आवरणों में आवृत, मात्र दिखावे की इस सभ्यता में वह निजत्व कहाँ। इसने तुमसे तुम्हारा अपनापन

छीन लिया है। तुम 'तुम' कहाँ हो। भाषा तुम अपनी नहीं बोलते, चाल तुम अपनी नहीं चलते, वेश-भूषा तुम्हारी अपनी नहीं। तुम्हारा जो कुछ है दूसरों का है, दूसरों के लिए है।

( देव के हाथ में की बोतल की ओर देखते हैं। )

*डा० हंसराज* : देव इधर लाओ।

*प०,बसन्तलाल* . नहीं रहने दो, मैं होश खो दूंगा।

*दीनदयाल* : तुम भा पयक्कड एक बोतल में होश खो देगा ! (हँसता है। )

*प० बसन्तलाल* : ( मदमस्त निगाहों से उसकी ओर देखते हुए ) यह दूसरी है, सुबह से पी रहा हूँ . . सुन लिया . .. अब भूल कर भी मुझे सभ्य-असभ्य का ताना न देना

*दीनदयाल* : ( अपने आदमी होने पर गर्व के साथ ) तुम कोई आदमी हो, शिष्टाचार तुममें नाम को नहीं।

*बसन्तलाल* : ( तुनक कर उसके घुटने को झकझोरते हुए ) जिसे तुम शिष्टाचार, एटीकेट ( Etiquette ) कहते हो, इसके चक्कर में पड़े कि गये। फिर रुकाव नहीं ! प्रातः उठने के साथ ही यह शिष्टाचार गला दबा लेता है। यह करो, यह न करो, यह पहनो, यह न पहनो ऐसे चलो, ऐसे न चलो, ऐसे बोलो, ऐसे न बोलो,

ऐसे हँसो, ऐसे न हँसो, ऐसे रोओ, ऐसे न रोओ (हँसते हैं, खाली हुक्का गुड़गुड़ाते हैं।) यहाँ तक तुम अपनी स्वाभाविक बोली, पहनावा, चाल हँसी रुदन सब कुछ भूल जाते हो।

(खाली हुक्का गुडगुडाते हैं।)

प० बसन्तलाल : मैंने एक युवक को देखा, जब उसने वकालत पास की तो अच्छा भला समझदार, मृदु-भाषी सरल, हँस-मुख युवक था। स्वाभाविक रूप से हँसता-बोलता था। फिर वह आई० सी० एस० हो गया। लगे शिष्टाचार और सभ्यता उसका गला दबाने। एक पार्टी मे मैंने उसे देखा। बस उसमे शिष्टाचार और सभ्यता ही थी और कुछ न था। न वह भाषा न स्वर, न हँसी न बोली, न चाल न ढाल, उसका अस्तित्व तक कृत्रिम नजर आता था। मुझे उस बेचारे पर दया हो आई।

(खाली हुक्के को गुडगुडाते हैं और जोर से चीखते हैं

— : अरे हरि, मर गया चिलम के साथ वहीं! (फि दीनदयाल से) और फिर सभ्य-समाज के इन नियमे का अंत कहाँ है। ज्यो ज्यो सभ्य से सभ्यतर समाज मे जाओ, 'ऐसे करो', 'ऐसे न करो' की बेड़ियां अपने पाँवों मे बढ़ाते जाओ! मेरा तो गेसं

सभ्यता मे दम घुट जाय।

( हरिनाथ चुपचाप आकर चिलम रख देता है )

*डा० हसराज* : पिता जी ने निश्चय किया है कि तीस हजार के खर्च से एक विशाल व्यायाम शाला खोलेंगे।

*दीनदयाल* : लेकिन तुम्हारे इन डंड बैठको और 'सौची पक्की', से होगा क्या, लोग तोपें और तलवारें ....

*पं० बसन्तलाल* : ( देव से लेकर थोड़ा सा और पेय कठ मे उडेल कर और दीनदयाल का हाथ थाम उसे सुझाते हुए ) तोपें तलवारें क्या भगोड़े चला सकेंगे, उनके लिये मानसिक और शारीरिक बल की आवश्यकता है। शरीर मे बल हो, मन मे साहस हो तो लाठी की जगह तलवार, बंदूक या तोप ले सकती है और कुश्ती का स्थान युद्ध।

*दीनदयाल*: लेकिन महात्मा गाँधी तो अहिसा का प्रचार कर रहे है।

*पं० बसन्तलाल* : ( हाथ छोड़ कर उसका कधा पकड़ते हुए ) महात्मा गाँधी की अहिसा बलवानो की अहिंसा है, ठोस आदमियो की अहिसा है, भगोड़ो या हीजड़ो की अहिसा नही। मैं अपने बेटो के नाम बीस हजार रुपया लगाने जा रहा हूँ और मैं चाहता हूँ कि उस रुपये को पाकर भी वे अपना निजत्व कायम रखें।

[ बोतल से काफी बड़ा पेग भर कर एक ही बार पी लेते हैं और कुर्सी पर पीछे को लेट जाते हैं, टाँगें भी उठाकर कुर्सी पर रख लेते हैं, आँखें बन्द कर लेते हैं और मौन रूप से हुक्का गुड़गुडाते हैं। ]

*डा० हंसराज* : ( घूम फिर कर पुनः मतलब की बात पर आते हुए ) परंतु गुरु का भी तो बताइए, वह कम से कम एम० ए० तक पढ़ेगा और मेरी प्रबल इच्छा है कि वह आई० सी० एस० की प्रतियोगिता में बैठे !

*पं० बसन्तलाल* : ( वहीं लेटे लेटे ) दस हजार उसके नाम लिख दो !

*डा० हंसराज* : पर अभी आपने कहा था कि मैं हर एक के नाम बीस हजार रुपया लगवा दूँगा।

*गुरु* : और फिर इन सब की पढ़ाई पर तो इतना खर्च आया है, मेरी .

*पं० बसन्तलाल* : ( डा० हंसराज से ) बीस हजार इसके नाम लिख दो !

*दीनदयाल* : ( सुअवसर देखकर ) कहो भाई हरि, तुम ने उस मशीन के सम्बन्ध में निश्चय किया है या नहीं ?

*हरिनाथ* : मेरी ओर से तो निश्चय ही निश्चय है। शेष सब तो पिता जी पर निर्भर है।

*दीनदयाल* : क्यों भाई बसन्तलाल, तुम इसे बड़ी सिलंडर

मशीन क्यों नहीं लगवा देते ? उस खिलौने की ठिच-ठिच में यह क्या लगा रहता है। देखो इसे सिलंडर मशीन लगवा दो ! अच्छा मशीन मैन रखे, अच्छा टाइप मँगवाये, फिर देखो दिनों में ही इसका प्रेस और पत्र कहाँ जाता है।

० बसन्तलाल : ( लगभग ऊँघते हुए ) कितने को आती है ?

दीनदयाल : आजकल तो उसकी कीमत बाईस हजार हो गई है। लोहे का मूल्य दिन प्रति दिन चढ़ रहा है, पर मैंने जो कह दिया, कह दिया। अपने वचन से बँधा मैं बैठा हूँ। इतने दिन से मैंने केवल इसके लिए ही रख छोड़ी है। हरि ने इच्छा प्रकट की थी। किन्तु यदि और दस दिन यह मशीन पड़ी रही तो उसका मूल्य दुगुना हो जायगा, फिर मैं विवश हो जाऊँगा और तुम भी बसन्तलाल, फिर मुझे कुछ न कहना !

० बसन्तलाल : ( नशे की झोंक में ) बाईस हजार का चैक दीनदयाल के नाम काट दो।

डा० हंसराज : लेकिन इन बाईस हजार से क्या होगा ? सिलंडर मशीन आयेगी तो क्या टाइप वही घिसा हुआ रहेगा, जिसकी मात्राएँ छोड़, शब्द के शब्द उड़ जाते हैं, और फिर काम बढ़ाने के लिए हाथ में क्या पूँजी न चाहिए।

दीनदयाल : मैं कहता हूँ बसन्तलाल, इन एक दो महीनो में तुमने लगभग एक लाख रुपया उड़ा दिया है, उस दिन तुमने उस उठाईगीर ब्राह्मण को दो हजार रुपये तीर्थाटन के लिए दे दिये !

प० बसन्तलाल : वह बड़ा श्रेष्ठ व्यक्ति था।

डा० हसराज : पिता जी सा दिल रखने वाला लाखों मे—मैं कहता हूँ—लाखो मे क्या, करोड़ों मे कोई विरला ही मिलेगा। चचा जी, आपसे क्या छिपा है—एक दिन घर मे कुछ तंगी थी। माँ किसी से बीस रुपये उधार लाई थी। वे सब पिता जी ने एक 'श्रेष्ठ व्यक्ति' को दे दिये। श्रेष्ठ व्यक्तियो की जो पहचान इन्हें है, वह किसे होगी ?

दीनदयाल : तीन चार हज़ार टाइप के लिए चाहिए। फिर प्रूफ निकालने वाला प्रेस और कटिंग मशीन भी तो खरीदनी पड़ेगी। फिर दस एक हज़ार रुपया हाथ में चाहिए, नहीं तो छापाखाना सफेद हाथी बन जाता है।

डा० हंसराज : मैं पैंतीस हजार लिखने लगा हूँ।

प० बसन्तलाल : तुम सैंतीस हजार लिख लो।

[ उठकर गिलास देव के हाथ से लेते हैं। सैंतीस हज़ार का नाम सुनकर कवि हरिनाथ का चेहरा दुगुना

हो जाता है। विद्युत की सी तेज़ी से इधर उधर वह देखता है कि वह क्या कर सकता है। जी उसका चाहता है कि अपने इस पिता के पाँवों से लिपट जाय, जब कुछ नहीं सूझता तो गिलास अपने पिता के हाथ से लेकर और बोतल देव के हाथ से लेकर वह बड़ी तत्परता से मदिरा ढालकर गिलास अपने पिता को दे देता है।]

*बसन्तलाल* : ( गिलास दीनदयाल की ओर बढ़ाकर ) अरे तुमने लिया ही नहीं, मैं तो भूल ही गया, लो न ( और आगे बढ़ाते हुए ) लो !

*दीनदयाल* : ( लालसा भरी दबी दृष्टि से गिलास की ओर देखकर ) नहीं नहीं.... ....

*बसन्तलाल* : ( बरबस गिलास उसके हाथों में देते हुए ) अरे लो।

*दीनदयाल* : ( गिलास को एक ही घूँट में खाली करके और पेय की कड़ुवाहट के कारण तनिक खाँस कर और रुमाल से मुँह साफ करके ) तुम्हें तो पता है बसन्तलाल, मैं रवि और मंगल के दिन नहीं पीता।

*बसन्तलाल* : ( अपने लिए पैग बनाते हुए ) और ये सब कहते हैं कि तुम शराबी हो। ( गिलास खाली करके अपने पुत्रों को सम्बोधित करते हुए ) देखो कितना संयम है दीन-दयाल में। मंगल और रवि के दिन यह बिल्कुल नहीं पीता, ( शून्य में हाथ से घेरा बनाते हुए ) यह इस

युग का राजा जनक है, धन और ऐश्वर्य मे रहते हुए भी सर्वथा निर्लिप्त !

[ पीछे की ओर लेट जाते हैं। चचा चाननराम प्रवेश करते हैं, डाक्टर हंसराज और दूसरे भाई उठकर 'नमस्ते' करते हैं। चचा चाननराम पडित बसन्तलाल के पॉव छूते हैं। ]

*प० बसन्तलाल :* ( उठकर आशीर्वाद देते हुए ) चिरंजीव रहो ( फिर अपने पुत्रो मे ) एक तुम हो कि अपने शिष्टाचार और सभ्यता को लिये फिरते हो। बडो का सत्कार इस तरह किया जाता है ? ( नकल उतारते हुए )—"चचा जी नमस्ते"—गोली मारो नमस्ते को !—प्रणाम करो सब !

[ फिर टॉगे तिपाई पर रख लेते हैं और पीछे को लेट जाते हैं। सब भाई बारी बारी चचा चाननराम के घुटनो को छूते हैं। और वे 'चिरंजीव रहो,' 'चिरजीव रहो' कहते हुए दीनदयाल के साथ वाली कुर्सी पर डट जाते हैं। ]

*चाननराम* . ( नये मिले सत्कार से फूल कर, बैठते ही ) मैं कहता हूँ, अब जगह खरीदने और कोठी बनवाने का पचडा मोल लेने की आवश्यकता नहीं।

[ डा० हंसराज प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखते हैं। ]

ाननराम : तीस हजार मे बनी बनाई कोठी मिल सकती है, मेरा मित्र है न लज्जाराम,. कमीशन एजेंट, उसने मुझे उस कोठी का पता बताया है। गैरेज है, लान है, ड्राइंगरूम है, दस कमरे हैं, सुन्दर स्नानगृह है, फ्लश-सिस्टम है, छोटी सी बैडमिंटन कोर्ट है, मैं कहता हूँ, क्या नही है? और फिर इर्द-गिर्द चार दीवारी है, चाहो तो मजे से वहाँ अखाड़ा बनवा लो, मुगदर रख लो।

न्तलाल : बस वह कोठी ले लो..

हंसराज : मैं देख लूँ।

न्तलाल : देखने की क्या जरूरत है, चाननराम ने जो देख ली है।

ाननराम : मेरे मित्र लज्जाराम ने कहा कि पं० बसन्तलाल के लिए उससे अच्छी कोठी सारे लाहौर मे कहीं नही मिल सकती और दुनिया इधर की उधर हो जाय, मेरा मित्र झूठ नहीं बोल सकता।

ानदयाल : साधारण दलाल से जो वह इतना बड़ा कमीशन-एजेंट बन गया है कि दो दो कारे उसके दरवाजे पर खड़ी रहती हैं, यह सब उसकी 'सत्यवादिता' ही का तो चमत्कार है।

हंसराज : बहरहाल मैं तीस हजार का चैक कोठी के खाते काट रखता हूँ, पर पहले मैं उसे देखूँगा जरूर।

चाननराम : मेरे मित्र लज्जाराम ने मुझे रियायती दाम बताये हैं।

प० बसन्तलाल : लज्जाराम बड़ा श्रेष्ठ व्यक्ति है।

दीनदयाल : इसमे क्या सन्देह है।

चाननराम : (डा० हंसराज से) और कहो बेटा, तुमने कौन सी जगह अपने काम के लिए पसन्द की ?

डा० हंसराज : (फिर अपने पिता के पांव दबाते हुए) जगह तो मैने पसन्द कर ली है और आप भी पसन्द कर लेंगे। माल पर है, और बिल्कुल अलग है, पर किराया वे छै महीने का पेशगी मॉगते है।

चाननराम : हॉ किराया तो मॉगेंगे ही। पर क्या डर है, यदि जगह अच्छी हुई तो दे देना। कहॉ है ?

डा० हंसराज : अजी वही जो हालरोड और मालरोड के चौरा पर है।

चाननराम : (लगभग उछल कर) चौराहे पर ! तब तो मे मित्र लज्जाराम ने ठीक ही कहा था, टेम्पल रोड बिल्कुल पास ! वहाँ वह कोठी है, जिसका मैं जिक्र किया।

डा० हंसराज · बेहद मौके की जगह है—एक ओर मा

है दूसरी ओर हाल। छोटा सा लान आगे है, गेरेज भी है। और मोटर के लिए गोल मार्ग बना हुआ है। (धीरे से) प्रेक्टिस जमाने के लिए मोटर तो रखनी ही पड़ेगी।

ानन्राम : किराया क्या है ?

हंसराज : तीन सौ रुपया मासिक !

ानन्राम : ऐसी कोठी का तो साल भर का किराया पेशगी दे देना चाहिए।

न्तलाल : (जो इस बीच में नशे में गुट पड़े हैं) दो साल का पेशगी दे दो!

नियात : (जो शायद चुप बैठा ऊब गया है और जिसे सहसा अपनी मशीन के बेचने का ख्याल आ गया है।) जगह भी तो माल पर है।

हंसराज : और वहाँ दस एक विस्तर भी आ सकते हैं—बीमार के—मैं जो सेनीटोरियम खोलना चाहता हूँ, उसकी नींव इसी तरह तो पड़ेगी। खास रोगियों का उपचार मैं वहाँ किया करूँगा और अपनी प्रसिद्धि के लिए अपनी सेवाएँ किसी फ्री अस्पताल को फ्री* दे दूँगा। डा० नुस्खा क्या करता है?...

* निःशुल्क।

राधेश्याम की अस्पताल में उसने अपनी सेवाएँ रखी हैं, पर आपरेशन जो वह करता है, उन में ७५ प्रतिशत सीधे स्वर्ग के पासपोर्ट सिद्ध होते हैं किन्तु इसी तरह तो अनुभव प्राप्त होता है। औ आप देख लीजिएगा, कल लूस्या शैतान की तरह प्रसि हो जायगा। जिसके हाथों कम के कम सौ आद मुक्ति न पा जायँ, वह सर्जन कैसा !

चाननराम : तुमने कृष्ण के सम्बन्ध में भी कुछ सोचा ?

डा० हंसराज : मैं उसे अपने साथ रखूँगा। शुरू शुरू में उसव उत्साह बढ़ाने के लिए जो आप कहेंगे, दे भी दूँगा और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, मेरे साथ यं वह दो वर्ष रह गया तो निपुण सर्जन बन जायगा।

चाननराम वह स्वयं होशियार है। कालेज में प्रोफेस उसकी प्रशंसा करते थे। वह तो कहता था—मुं अलग से दुकान खोलवा दो ! पर मुझ में हिम्मत नहीं,

डा० हंसराज : सब कुछ पिता जी पर निर्भर है, मैं आपव भरसक सहायता करूँगा। कृष्ण. . .

पं० बसन्तलाल (खुमारी से जागते हुए) कृष्ण बड़ा श्रे लड़का है।

(आँखें बन्द किये हुए हुक्का गुड़गुड़ाते हैं)

*चाननराम* : आप भाई साहब, हंस को मालरोड पर दुकान क्यों नहीं खुलवा देते। अब मौके की जगह मिल रही है, फिर कौन जाने वर्ष भर जगह न मिले। वहाँ दुकान खोलते ही हंस का नाम प्रान्त भर में प्रसिद्ध हो जायगा।

*वसन्तलाल* : (पूर्ववत् आँखें बन्द किए) तो खोल लो वहाँ!

*चाननराम* : खोल कैसे लें? कल आप तो रुपया उड़ा दें और इसके लिए उस दूकान का किराया तक देना कठिन हो जाय। देखो भाई, हंस के नाम तीस चालीस हजार रुपया लगा दो।

10 *हंसराज* : तीस चालीस हजार से क्या होगा (दीनदयाल से) क्यों चाचा जी, सामान तो आप के यहाँ से ही आयेगा। माल पर दुकान जमाने के लिए बीस हजार तो सामान पर ही लगाना पड़ेगा और फिर कार भी रखनी पड़ेगी और शोफर भी और नौकर भी।

[पंडित वसन्तलाल उठकर देव की ओर हाथ बढ़ाते हैं। डा० हंसराज गिलास में काफी पेय डालकर उनको देते हैं।]

— : (अपनी बात जारी रखते हुए) कम से कम पचास हजार तो मुझे दिया जाय।

*चाननराम* : पचास हजार से कम में कैसे काम चल सकता है!

दीनदयाल : माल पर लाख भी लग जाय तो अधिक नहीं।

पं० बसन्तलाल : ( गिलास खाली करके मूँछें पोंछते हुए ) तो प[चास]
हज़ार लिख लो ! ( गिलास मेज पर पटक कर
लुढकते हुए ) देव कुछ गाओ !

( देव चुप रहता है। )

( उसी प्रकार नशे में आँखें बन्द किये कडक कर ) गाओ
देव : जी मैं . . .

पं० बसन्तलाल : कहता हूँ गाओ ! ( ज़ोर से हवा में हाथ मा[रते]
हैं, हुक्का गिर जाता है, और चिलम दूर तक लुढ[क]
जाती है ) गाओ !

( अत्यन्त बेसुरे तौर पर देव गाना आरम्भ करता है )

"ओ जीने वाले . हँसते हँसते जीना !"

पं० बसन्तलाल : ( उठकर झूमते हुए ) चल कमबख्त, तू क्या गायेगा
मैं गाता हूँ।

डा० हंसराज : ( हस्ताक्षर करने के लिए चैक झुक अपने पिता
सामने करके, फाउंटेन कलम उनके हाथ में देते हुए
पिता जी जब गाया करते थे तो उनका स्वर मी[लों]
तक लहराता चला जाता था।

[ सच चैकों पर हस्ताक्षर करके बोतल का शेष पेय गले मे उडेल कर, लडखड़ाते हुए, पडित बसन्तलाल उठते हैं और थथलाती लेकिन अत्यन्त सुरीली और ऊँची आवाज मे गाना शुरू करते हैं ।

"दे डारो राधे रानी बाँसुरी मोरी"

किन्तु उनका स्वर फट जाता है और वे लड़खडाते हुए कुर्सी पर गिर पडते है ]

न्तलाल : जब मैं स्कूल मे पढता था तो कृष्ण बना करता था, और मेरा स्वर पर अब इस शराब कम्बख्त ने मेरा सत्यानाश कर दिया है। मेरा वह स्वर नही रहा, मेरा वह कंठ नहीं रहा, मेरी वह देह नही रही। ( सहसा कठ भर लाते हैं। ) देखो बेटा, इस कम्बख्त को मुँह न लगाना इस कम्बख्त ने

[ हुक्के को हाथ से टटोलते हुए नशे मे बेहोश हो जाते है । ]

हसराज : ये तो गुट हो गये ।

न्तलाल : ( उठने का विफल प्रयास करते हुए ) कौन कहता है । मैं अभी पूरी बोतल चढ़ा सकता हूँ। दीनदयाल आओ . .

दीनदयाल : ( उठता हुआ ) तुम्हे तो मालूम है। मैं मंगल रवि के दिन नही पीता ।

( बसन्तलाल फिर मदहोश हो जाते हैं। )

( पर्दा गिरता है। )

( पर्दा धीरे धीरे उठता है। )

[ सामने स्टेज पर अँधेरा है, किन्तु प्रकाश से सहमा अँधकार मे आने पर यद्यपि आँखें कुछ भी नहीं देख पातीं, तो भी उससे तनिक अभ्यस्त होने पर वे देखना आरम्भ कर देती है। और फिर यहाँ तो सामने के दरवाजो के शीशे अन्दर के प्रकाश के कारण चमक रहे है। इसलिए कुछ कुछ दिखाई देने लगता है।

सामने एक बरामदा दिखाई देता है, वह हमारा पूर्व परिचित बरामदा है या कोई और, यह बात निश्चय के साथ नहीं कही जा सकती। सामान उसमें कुछ नहीं और शायद इसलिए कुछ खुला खुला सा दिखाई देता है। केवल एक ओर एक

चारपाई बिछी नजर आती है और अंधकार से तनिक और अभ्यस्त होने पर हम देखते है कि उस पर कोई सोया हुआ भी है।

एक दो बार कुछ अव्यवस्थित से खुर्राटो की आवाज भी आती है। फिर खामोशी छा जाती है। फिर दो छायाएँ स्टेज पर आती हैं। ]

एक : नही चचा जी, आप हमारी खातिर यह कष्ट कीजिए, भला मैं यह कैसे सहन कर सकता हूँ कि हमारे लिए आप को चार पाँच हजार की हानि सहन करनी पड़े। आप उस मशीन को बेच दीजिएगा।

दूसरी . किन्तु इतनी सस्ती और अच्छी मशीन आपको इतने सस्ते मे हाथ न आयेगी और फिर और दस दिन तक उसकी कीमत दुगुनी हो जायगी।

[आवाज से हम जान लेते है कि यह दो छायाएँ डा० हसराज तथा दीनदयाल के अतिरिक्त कोई नहीं। ]

डा० हसराज · ( गम्भीरता के आवरण मे आवृत व्यंग्य से ) तो मेरी राय में आप उसे अभी और दस दिन तक रख छोडें, जब उसकी कीमत दुगुनी हो जाय तो उसे बेच डाले.....

दीनदयाल : मुझे तो प० बसन्तलाल का ख्याल था।

हंसराज : उनका ख्याल अब आप छोड़ दें। आप ने उन का पहले ही कम ख्याल नहीं रखा।

ीनदयाल : (व्यंग्य को सुना अनसुना करके) लेकिन हरि...

हंसराज : हरि का अभी प्रेस बढ़ाने का कोई इरादा नहीं।

ीनदयाल : पर तुमने . .

हंसराज : हाँ, मैंने तो कहा था, पर हरि ठहरा अस्थिर चित्त का व्यक्ति। तब उस का विचार था कि प्रेस चलायगा, बढ़ायगा, पर अब मैं देख रहा हूँ कि वह पहला भी बेच कर कहीं काश्मीर, नैनीताल जाने की सोच रहा है। कवि तथा पागल को तभी तो विद्वानों ने एक सा समझा है।

ीनदयाल : ( वंश का शुभचिन्तक ) समय बड़ा कठिन है। ऐसे वक्त तुम उसे किस तरह यों बेकार आवारागर्दी करने की सलाह दे सकते हो। मेरे पास जो मशीन है..

हंसराज : लेकिन चचा जी, मशीन को लेकर वह करेगा क्या? कागज़ तो बाज़ार में मिलता नहीं। जितना कागज निकलता है, वह तो सरकार अपने दफ्तरों के लिए ले जाती है और दफ्तरों में आप जानते हैं, दो पंक्तियाँ लिखना हो तो पूरा फुलस्केप का कागज नष्ट कर दिया जाता है। बाहर से कागज़ आता नहीं। बड़े-बड़े

पुराने जमे हुए छापेखानों के मालिक अस्थायी रूप से काम बन्द करने की सोच रहे हैं, फिर बेचारा हरि तो इस झंझट को पहले ही चला नही पाता।

दीनदयाल . खैर उसकी इच्छा! पर तुम माल पर दुकान खोल रहे थे, तुम्हे सामान चाहिए था और तुम ने कुछ भी पता नहीं दिया।

डा० हंसराज : मुझे युद्ध में खेमे सप्लाई करने का ठेका मिल गया है। हिस्सेदारी तो है, पर ठेका भी पाँच लाख का है।

दीनदयाल . किन्तु मैंने तो तुम्हारे लिए सामान मँगा रखा था।

डा० हंसराज आपके दुगने हो जायँगे, कुछ दिन और रख छोड़िए!

दीनदयाल : (निरन्तर हमलों से घबराये बिना) परन्तु ..

डा० हंसराज : मैं तो पहला भी बेचने की सोच रहा हूँ।

दीनदयाल : (अडिग पर आश्चर्य से) हरि भी मशीन बेचना चाहता है और तुम भी सामान बेचना चाहते हो!

डा० हंसराज : आप विश्वास कीजिए। जब इसमें लाभ ही नहीं तो क्या करे। वह छापेखाने में बैठा दिन दिन भर मक्खियाँ मारा करता था और मैं दवाखाने में। वह कवि है, इस लिए जरूरी नहीं कि एक ही व्यवसाय को गले बाँधे और मैं कवि नहीं कि एक ही व्यवसाय को गले से चिमटाये रखूँ।

दीनदयाल : तुम्हारी यह परस्पर-विरोधी बात मेरी समझ में नहीं आयी।

डा० हंसराज : बात यह है कि कवि स्वभावतया अस्थिर चित्त का व्यक्ति होता है और किसी एक व्यवसाय को अपनाये रखना उस के बस की बात नहीं होती, लेकिन यदि वह ऐसा करता है तो केवल भावुकता-वश। और यदि भावुकता-वश वह एक व्यवसाय से चिमट जाय तो फिर वह उसे नहीं छोड़ता, चाहे उसके प्राण भी क्यों न वहीं होम हो जायँ। व्यापारी आदमी निरन्तर हानि होने पर भी जहाँ एक व्यवसाय में टिका, समझिए वह कवि हो गया। मैं शुद्ध व्यापारिक बुद्धि रखता हूँ। मैं कवि नहीं इसलिए क्यों एक खसारे के काम को गले लगा रखूँ?

दीनदयाल (तनिक और समीप होकर भेद भरे स्वर में) तो देखो जब तुम सामान अथवा मशीन बेचने लगो, मुझ से पूछ लेना, मैं महँगे से महंगे दाम पर तुम दोनों की चीजें बिकवा दूँगा।

[दीनदयाल की छाया आलोप हो जाती है, एक दूसरी छाया आती है :

— : दीनदयाल आया था?

[आवाज से हम जान लेते हैं कि डा० हंसराज की संगिनी श्रीमती कमला देवी हैं।]

डा० हंसराज : मैंने उसे धता बता दी।

कमला : पर आपने तो वचन दिया था।

डा० हंसराज : वचन न देता तो ये लोग पिता जी को भड़का न देते! रिश्वत . . . रिश्वत . . . रिश्वत। आज की दुनिया में जितने काम इस से निकलते हैं, उतने किसी से नहीं निकलते। फिर इस रिश्वत का रूप रुपया भी हो सकता है, भेंट पुरस्कार भी, प्रशंसा भी, खुशामद भी और लूट का हिस्सा भी—ये दोनों चचा साहबान आसानी से जितना धन लूट सकते थे लूट चुके थे। और लूटने के लिए इन्हें बहाना चाहिए था। वह बहाना उपस्थित करके मैंने इन्हें अपने और दूसरे भाइयों के मामले में चुप रहने की रिश्वत दी। दीनदयाल ने समझा हरि उसकी वह पुरानी मशीन खरीद लेगा, जिसे आज आठ वर्ष से सारे लाहौर में किसी ने नहीं लिया और हंसराज माल पर दुकान खोलेगा, तो उसे समान सप्लाई करने के बदले गहरी रकम हाथ आयेगी और चचा चाननराम ने सोचा कि उनका वह नालायक लड़का सर्जन बन जायेगा—रिश्वत! आज उन्नति के शिखर पर चढ़ने के लिये इससे अच्छा कोई साधन नहीं। कल की बात मैं कह नहीं सकता।

[ छायाएँ लुप्त हो जाती हैं और क्षण भर के लिए स्टेज पर रोशनी हो जाती है। बरामदा खाली है।

एक ओर चारपाई पर कोई लेटा हुआ है, उस के परेशान खुर्राटों की आवाज फिर सुनाई देती है।

स्टेज पर फिर अँधेरा छा जाता है। दो छायाएँ एक दूसरी का पीछा करती हुई आती हैं। ]

एक : ( आवाज गुरु की है ) नहीं माँ, मुझे न तंग करो। मैं आई० सी० एस० बनने के लिए भाग-दौड़कर रहा हूँ। यदि किसी को पता चल गया कि मेरा पिता वहाँ सब्जी मंडी या लंडे बाजार की नालियों में औंधे मुँह पड़ा रहता है, तो मेरा सब भविष्य नष्ट हो जायगा।

[ दामन छुडाकर भाग जाता है। माँ की छाया उसके पीछे जाती है और अनुनय के स्वर में चीखती है :— ]

— : पुत्र, पुत्र.....

[ पुत्र की छाया निकल जाती है। एक और छाया प्रवेश करती है। ]

— : देव . .

( उस की ओर बढ़ती है। )

देव : (बचता हुआ) नहीं माँ, उन्हें रखना मेरे बस का रोग नहीं, मैं डरता हूँ। मुझे उनके पास बैठते हुए भय आता है। वे आज भी थप्पड़ जमाने और गालियाँ

देने को तैयार हो जाते है। अपने यहाँ रखना तो दूर रहा, मैं तो उनके पास तक नहीं जा सकता।

( कन्नी कतरा कर निकल जाता है। )

माँ : ( उस के पीछे जाती हुई ) पुत्र . . पुत्र ...

[ एक और छाया प्रवेश करती है। हाथ में बैग थामे हुए ]

माँ : ( उस की ओर बढ़ती हुई ) बेटा हरि, तेरे पिता की हालत ......

हरि : मुझे यहाँ नहीं रहना माँ, मुझे अभी शाति-निकेतन जाना है। ( गर्व से सीना फुलाकर ) तुम्हे नहीं मालूम, मेरी ख्याति पंख लगाकर उड़ चली है। मुझे जगह जगह से निमंत्रण आ रहे है। मैं शाति-निकेतन अपनी कविताओ पर एक भाषण देने जा रहा हूँ। जब लोगों को पता चलेगा मैंने किन कठिन परिस्थितियों में परवरिश पायी है, मेरा पिता कितना क्रूर तथा निर्दयी है तो वे मेरी प्रतिभा पर आश्चर्यान्वित रह जायेंगे। आज ही मुझे शान्ति निकेतन चला जाना है।

[ तेज तेज चला जाता है, एक और छाया प्रवेश करती है। ]

माँ : (उसकी ओर बढती हुई ) बेटा हंस, तुम भी अपने पिता की हालत पर तरस न खाओगे तो कौन खायेगा, पुत्र.. ..

हंसराज : मैं तुम्हे कितनी बार कह चुका हूँ कि मुझे तंग न करो। क्यों बार बार मेरी जान खाती हो। यदि उन्हों ने सब रुपया गँवा दिया है तो इसमे मेरा क्या दोष है, यदि वे फटे हाल रहना चाहते हैं तो मैं क्या करूँ !

माँ : उन्हों ने तुम्हे ... ... ...

हंसराज : मान लिया उन्हो ने मुझे यह सब कुछ बनाया लेकिन क्या मैं भी इस सब को उनकी भाँति गँवा दूँ। फटे हाल, तार तार कपड़े लिये शराबखानो मे घूमता फिरूँ, गालियाँ दूँ, गालियाँ खाऊँ, नालियो मे गिरता फिरूँ, मक्खियाँ मुझ पर भिनभिनाये और कुत्ते मेरा मुँह चाटे।

माँ : पुत्र... ..... . . ...

हंसराज : मैंने क्या कुछ नहीं किया। उन्हे अच्छे से अच्छे बंगले मे, अच्छे से अच्छे कपड़ो मे आवृत रखा। चूँकि शराब उन की हड्डियो मे रच गयी है और वे छोड़ नहीं सकते, इस लिए अच्छी से अच्छी शराब तक उन्हे पीने को दी, पर वे उस कोठी को पिंजरा और उस कीमती शराब को कुल्हिया का पानी समझते रहे। फिर मैं क्या करूँ ?

माँ : पुत्र ..... .....

डा० हंसराज : और मैं चाहता क्या था ? केवल थोड़ा सा शिष्टा चार ! मात्र थोड़ी सी सभ्यता !! लेकिन उन्हें भ बाजार ऊँचे ऊँचे बोलना, गालियाँ देना गालि खाना, पीटना पीटना और अपने यारों के सा मस्त झूमते फिरना पसन्द है—कमीज़ खुली है इसकी उन्हें परवाह नहीं, धोती लटक रही है इसकी उन्हें चिन्ता नहीं, सिर या पाँव नंगे हैं इसका उन्हें ध्यान नहीं—इस हालत में मैं उनकी क सेवा कर सकता हूँ ? मैं स्वयं उन सा तो होने रहा और उन के साथ वही रह सकता है, जो उ सा हो जाय !

माँ : पुत्र आखिर व तुम्हारे पिता......

डा० हंसराज : मैं किसी का पुत्र नहीं। कोई मेरा पिता नहीं। आज मैं इतनी मेहनत, इतने परिश्रम, इतनी दौड़ धूप के बाद सफलता की सीढ़ी पर चढ़ा हूँ। क्या तुम चाहती हो, मैं फिर नीचे का नीचे जा रहूँ—मुझे नित नई पार्टियाँ, नित नये डिनर देने होते हैं। कहाँ लाकर रखूँ मैं उन्हें अपने यहाँ ?

माँ : किन्तु उन्हें तुम रुपये...

डा० हसराज : उन्हें रुपये देने का मतलब अंधे गंदे कुएँ में उन्हें फेंकना है। रुपये का उन के समीप कोई महत्व नहीं। मिट्टी के ढेलों की भाँति वे उन्हें उछाल देते

है। उन को दिये गये रुपये सब्जी मंडी, लोहारी अथवा लंडा बाजार की नालियों के कीड़े बनते हैं।

( चले जाते हैं। )

[ माँ निमिष भर सिर थामे खड़ी रहती है, फिर डा० हसराज के पीछे जाती है कि दायीं ओर से एक और छाया आती है। माँ उसकी ओर बढती है और पुकारती है :—

माँ : कैलाश !

कैलाशपति : मुझसे तुम क्या कहती हो, इतना ही क्या कम है कि मैं तुम्हें कुछ नहीं कहता। कोई दूसरा होता तो अब तक कब का पकड़ कर जेल में ठोस देता। शराब पीकर वे इतना अँधेर मचाते हैं कि मेरी सब की सब व्यवस्था भंग हो जाती है। उन के कारण मेरे इलाके में मेरा कोई रोब नहीं रहा। मैं पुलिस-इन्स्पेक्टर हूँ, घसियारा नहीं। किन्तु उनके कारण मेरी अवस्था घसियारों से भी गई बीती है, भरे बाजार में वे मुझे आधा नाम लेकर पुकारते हैं, मेरे मातहतों के सामने वे मुझे गालियाँ देने लगते हैं। मैंने अपनी तब्दीली के लिए प्रार्थना की है। यदि मुझे तब्दील न किया गया, तो मुझे विवश होकर उन्हें सीखों के अन्दर करना पड़ेगा।

दिये गये हैं और बरामदे में केवल वही चारपाई बिछी है, जिस पर अत्यधिक मद्यपता की अवस्था में पंडित वसन्तलाल को लिटाया गया था। वे अभी तक शायद लेटे हुए हैं। क्योंकि करवट लेते समय उन की चादर खिसक जाती है, और हम उन्हें पहचान लेते हैं।

रसोई घर से अभी तक हल्का हल्का धुआँ निकल रहा है।

रोशनी होने के कुछ क्षण बाद माँ रसोई-घर से निकल कर धीरे धीरे चारपाई के पास जाती है और उन्हें हिलाती है। ]

माँ : ऐ जी ऐ जी.....

[ जोर से हिलाती है। पंडित वसन्तलाल हड़बड़ा कर उठते हैं। ]

माँ : मैं कहती हूँ, दो बजने को आये हैं। उठो, अब उठ कर कुछ खा-पी लो, मुझे भी दो कौर निगलने हैं।

पं० वसन्तलाल : (निद्रित तथा पूर्ववत् थथलाती हुई आवाज में) मैं पूछता हूँ, दयालचन्द !

माँ : ( आखों मे चमक आ जाती है ) दयालचन्द !

पं० वसन्तलाल : मेरा छठा बेटा !

[ तभी उनकी दृष्टि धरती पर गिरे हुए लाटरी के टिकट पर चली जाती है। वे उसे उठा लेते हैं, उसे आँखों के पास ले जाकर पढते हैं। तभी जैसे झूमते हुए उठ खडे होते हैं सब कुछ उनके सामने साफ हो जाता है। वे सहसा चौक पड़ते हैं और चिल्ला उठते हैं।

*न्तलाल* : तो क्या यह केवल सपना था।

[ फिर चारपाई पर लुढक जाते हैं—पर्दा गिरता है। ]

## 'कैद' और 'उड़ान'

'कैद' और 'उड़ान'—अश्क के दो नवीनतम नाटक हैं। परन्तु दो होकर भी, ये उसी प्रकार एक हैं जैसे मनुष्य का बायाँ और दायाँ, दोनो चरण क्रम से उठकर, एक गति-शील पग बनाते हैं।

इस एक युग में नारी ने प्रगति-पथ की भारी मंजिल तय कर ली है। जो नारी 'कैद' में निष्क्रिय, असमर्थ और कारावद्ध है, वह उड़ान में सक्रिय, विद्रोहिनी और अपनेपन की खोज मे विकल है।

और अपने इन दोनों नाटकों मे, जो नाटकीय कला ही के नहीं, सुपाठ्यता के भी अपूर्व नमूने हैं, अश्क ने मध्यवर्गीय पतनोन्मुख समाज के शिकजों मे जकड़ी हुई नारी और उसके सहयोग से वंचित अस्वस्थ, अभाव-ग्रस्त और विकृत पुरुष के सामने एक नयी पगडंडी बिछा दी है। यह पगडंडी 'अखनूर' की स्वप्निल घाटियों से गुजरती और 'नहूँग' की खूँख्वार लहरों को चीरती, 'रमेश' की उपासना के शिखरों और 'शंकर' की वासना के खड्डों से बचती हुई समतल धरती की खोज में बढ़ी चली जाती है।

नाटकों की दिलचस्पी अश्क की वही पुरानी है जिससे न केवल उनके नाटक खेले, वरन् चाव से पढ़े भी जाते हैं। मूल्य २॥।)

# पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ

अश्क जी के सात एकांकी नाटकों का संग्रह है। किन्तु इतनी बात इसके महत्त्व को प्रकट नहीं करती, क्योंकि इससे पहले भी उनके सात सात एकांकियों के तीन संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'देवताओं की छाया में' 'चरवाहे', 'तूफ़ान से पहले'—सभी में सात सात एकांकी संकलित हैं। *पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ* की विशेषता यह है कि इसके नाटक साधारण एकांकी न होकर, हास्य रस से ओत-प्रोत एकांकी हैं।

*पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ*—के नाटकों में न केवल नाटककार स्वयं खुल कर हँसता है, वरन् अपने साथ पाठकों और दर्शकों को भी हँसाता है।

इधर कुछ वर्षों से स्कूलों कालेजों के एमेचर रंग मंचों पर अश्क जी के प्रहसन बड़े लोकप्रिय हो रहे हैं। दो वर्ष पहले इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उनके हास्यरस के एकांकी 'जोंक' और 'अधिकार का रक्षक' खेले गये। 'अधिकार का रक्षक' गत वर्ष बम्बई और रोपड़ में खेला गया और 'तौलिये' इलाहाबाद में। इस वर्ष 'जोंक', रोपड़ में खेला गया और 'तौलिये' बड़ी सफलता से 'वेवल थीएटर' नयी दिल्ली में अभिनीत हुआ। प्रस्तुत संग्रह का पहला नाटक छपते छपते दो बार खेला जा चुका है।

जिन पाठकों अथवा दर्शकों को अश्क जी के गम्भीर नाटकों की अपेक्षा उनके प्रहसन अधिक रुचते हैं, वे इन हास्य-रस से भरपूर एकांकियों का हार्दिक स्वागत करेंगे। संग्रह राजस्थान के पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत है।

दोहरा, दो रंगा आवरण-पत्र, एंटिक कागज। मूल्य ३॥)